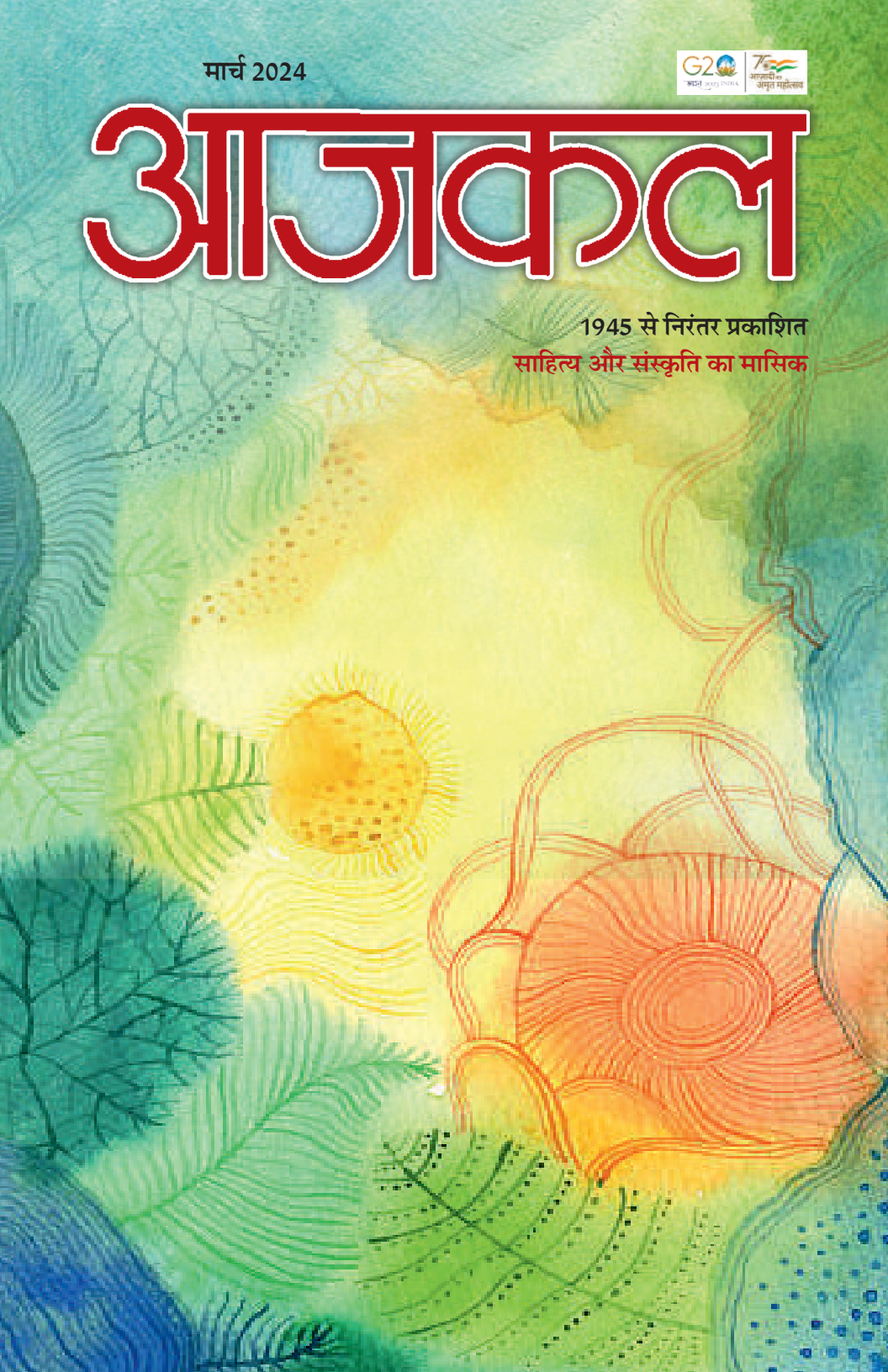
मार्च 2024

आजकल

1945 से निरंतर प्रकाशित

साहित्य और संस्कृति का मासिक





योजना
विकास को समर्पित मासिक
(हिंदी, अँग्रेज़ी, उर्दू व 10 अन्य भारतीय भाषाओं में)

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

कुरुक्षेत्र
ग्रामीण विकास पर मासिक
(हिंदी और अँग्रेज़ी)

आजकल
साहित्य एवं संस्कृति का मासिक
(हिंदी तथा उर्दू)

बाल भारती
बच्चों की मासिक पत्रिका
(हिंदी)

घर पर हमारी पत्रिकाएँ मंगाना है काफी आसान...

आपको सिर्फ नीचे दिए गए 'भारत कोश' के लिंक पर जा कर पत्रिका के लिए ऑनलाइन डिजिटल भुगतान करना है-
https://bharatkosh.gov.in/Product/Product

सदस्यता दरें

प्लान	योजना या कुरुक्षेत्र या आजकल		बाल भारती	
वर्ष	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ
1	₹ 230	₹ 434	₹ 160	₹ 364

ऑनलाइन के अलावा आप डाक द्वारा डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर से भी प्लान के अनुसार निर्धारित राशि भेज सकते हैं। डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल ऑडर या मनीआर्डर '**अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय**' के पक्ष में **नई दिल्ली** में देय होना चाहिए।

अपने डीडी, पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर के साथ नीचे दिया गया 'सदस्यता कूपन' या उसकी फोटो कॉपी में सभी विवरण भरकर हमें भेजें। भेजने का पता है-
संपादक, पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कक्ष सं. 779, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003

अधिक जानकारी के लिए ईमेल करें- pdjucir@gmail.com

हमसे संपर्क करें- **फोन : 011-24367453** (सोमवार से शुक्रवार सभी कार्य दिवस पर प्रात: साढ़े नौ बजे से शाम छह बजे तक)

कृपया नोट करें कि सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद सदस्यता शुरू होने में कम से कम आठ सप्ताह लगते हैं। कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें और पत्रिका न मिलने की शिकायत इस अवधि के बाद करें।

सदस्यता कूपन (नई सदस्यता/नवीकरण/पते में परिवर्तन)

कृपया मुझे 1 वर्ष के प्लान के तहत ..... पत्रिका ..... भाषा में भेजें।

नाम (साफ व बड़े अक्षरों में) .....

पता : .....

..... ज़िला ..... पिन .....

ईमेल ..... मोबाइल नं. .....

डीडी/पीओ/एमओ सं. ..... दिनांक ..... सदस्यता सं. .....

स्थापित 1945

आजकल

अनुक्रम

मार्च, 2024
फाल्गुन-चैत्र 1945

❖ वर्ष : 79 ❖ अंक : 11 ❖ पृष्ठ : 108 ❖ पूर्णांक : 943

स्मरण/श्रद्धांजलि

9 फणीश्वरनाथ रेणु के निबन्ध — अंजली एस.

16 महादेवी वर्मा का रचना संसार — रघुनाथ उपाध्याय 'शलभ'

21 अपनेपन की आँच में — राजेन्द्र उपाध्याय

25 बेबी उर्फ़ मैत्रेयी शास्त्री के बहाने कुछ बातें... — अर्पण कुमार

33 हिमांशु श्रीवास्तव : पत्रों एवं स्मृतियों में — भारत भारद्वाज

38 अवसान दो संगीत विभूतियों का — पं. विजयशंकर मिश्र

44 स्त्री-विमर्श के निकष पर 'पुरुष और नारी' उपन्यास — विनोद कुमार सिन्हा

संस्मरण

49 अमुए की छाँव — देवेन्द्र कुमार पाठक

यत्र-तत्र-अन्यत्र

57 अलग गायन शैली — अरविंद दास

कहानी

61 रंग-बिरंग — दीपक शर्मा

वातायन

67 बेटे की तनख़्वाह — शिबन कृष्ण रैणा

कविताएँ/ग़ज़लें

71 दहक — प्रतिभा चौहान

72 कोई चुरा रहा है — अंजना वर्मा

74 अंतःकथा — शहंशाह आलम

75 है बस ये मुनासिब — विपिन जैन

स्पर्धा आजकल

76 छायावाद का पुनर्मूल्यांकन — रामदरश मिश्र

विविध रंग

84 अभिनय और नृत्य की अप्रतिम माला — प्रदीप सरदाना

88 'करमा' का सांस्कृतिक विवेचन — अखिलेश कुमार मौर्य

पुस्तक आजकल

94 रेल जीवन की अंदरूनी दास्तान — प्रभात कुमार रॉय

96 सार्थक कहानियाँ — प्रकाश पुरोहित

98 बलिदानी वीरांगनाएँ — अभिषेक चतुर्वेदी

100 पुस्तकें मिलीं

साहित्यिक गतिविधियाँ

101 रिपोर्ट — संतोष कुमार/वैश्विक हिन्दी सम्मेलन/सुमनेश कुमार चतुर्वेदी

प्रकाशन प्रायोजन

104 प्रकाशन विभाग के विभिन्न आयोजन

प्रसंगवश

पिछले माह संगीत क्षेत्र के विश्व स्तरीय प्रतिष्ठित 'ग्रैमी अवॉर्ड्स 2024' में भारत ने अपना जलवा बिखेरा और मशहूर तबला वादक ज़ाकिर हुसैन तथा बाँसुरी वादक राकेश चौरसिया समेत पाँच भारतीय संगीतकारों ने पुरस्कार जीते।

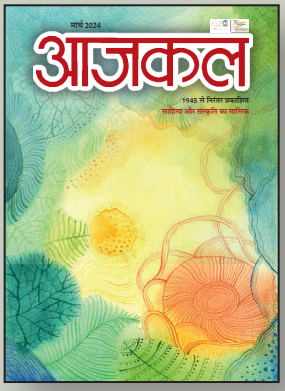
हुसैन ने तीन ग्रैमी पुरस्कार अपने नाम किए जबकि महान बाँसुरी वादक हरिप्रसाद चौरसिया के भतीजे राकेश चौरसिया ने दो पुरस्कार जीते। गायक शंकर महादेवन, वायलिन वादक गणेश राजगोपालन और तालवादक सेल्वागणेश विनायकराम के एक फ़्यूजन संगीत समूह 'शक्ति' ने 'दिस मूमेंट' के लिए सर्वश्रेष्ठ वैश्विक संगीत एल्बम की श्रेणी में 2024 का ग्रैमी पुरस्कार जीता। इस एल्बम में संगीत समूह के संस्थापक सदस्य ब्रिटिश गिटार वादक जॉन मैकलॉघलिन के साथ हुसैन, महादेवन, वायलिन वादक गणेश राजगोपालन और तालवादक सेल्वागणेश विनायकराम शामिल हैं।

इन पुरस्कारों की ख़बर ने इस वर्ष के पहले माह यानी जनवरी में बहुआयामी व्यक्तित्व की धनी शास्त्रीय संगीत गायिका, संगीतकार और लेखिका प्रभा अत्रे और जाने-माने शास्त्रीय गायक राशिद अली ख़ान के निधन के ज़ख़्म पर थोड़ा-बहुत मरहम अवश्य लगाया किन्तु इन दोनों के देहांत से हुए रिक्त स्थान को भरना कठिन होगा। संगीत की इन दोनों हस्तियों को श्रद्धांजलि स्वरूप एक आलेख इस अंक में दिया जा रहा है। संगीत का प्रसंग जब चल ही रहा है तो इस अंक में साभार शामिल ध्रुपद गायक राम कुमार मल्लिक के साक्षात्कार का भी ज़िक्र ज़रूरी है, उन्हें हाल ही में पद्मश्री दिया गया था। 90 वर्षीया फ़िल्म अभिनेत्री वैजयंतीमाला को पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया है। उन पर जानकारी से परिपूर्ण प्रदीप सरदाना का आलेख लिया गया है।

आधुनिक मीरा और कवयित्री महादेवी वर्मा की रचनाओं में नारी के सहज एवं स्वाभाविक स्वाभिमान की झलक मिलती है। छायावाद काव्यधारा की प्रमुख आधार स्तम्भ महादेवी ने छायावादी रहस्यवादी स्वरूप को तब भी दृढ़ता से बनाए रखा जब आधुनिक काव्य क्षेत्र में नए-नए वाद जन्म लेकर समाप्त होते रहे। इसी कारण छायावादोत्तर युग की और इस धारा की उन्हें एकमात्र अन्तिम कवयित्री स्वीकार किया गया। 'नीरजा', 'रश्मि', 'यात्रा', 'दीपशिखा' महादेवी के प्रमुख काव्य-संग्रहों में तो हैं ही, वहीं 'यामा' एवं 'सन्धिनी' में उनकी प्रतिनिधि कविताएँ संकलित हैं। जन्मदिन स्मरण स्वरूप महादेवी वर्मा के रचना संसार पर एक आलेख की पुनः प्रस्तुति की गई है।

हिन्दी साहित्य में आँचलिकता को महत्वपूर्ण स्थान दिलाने वाले साहित्यकार फणीश्वरनाथ रेणु इस माह की 4 तारीख़ को 103 बरस के हो जाते। कालजयी रचना 'मैला आँचल' के रचयिता का सम्पूर्ण कथा संसार लोकगीत, लोकोक्ति, लोक संस्कृति और लोक भाषा के इर्द-गिर्द रहा है। यथार्थवादी हिन्दी फ़िल्म 'तीसरी क़सम' के फ़्लॉप होने और निर्माता शैलेन्द्र को भारी आर्थिक नुकसान से क्षुब्ध होकर रेणु ने अपने एक निबन्ध "तीसरी क़सम को जान-बूझकर फ़ेल कर दिया था" में तब फ़िल्मी क्षेत्र में बढ़ती हुई व्यावसायिकता तथा गुटबंदी पर कटाक्ष किया था। रेणुजी शब्दों के चित्रकार हैं, लेकिन निबन्ध एक ऐसी विधा है जिसमें ज़्यादातर तथ्यों का पुष्टीकरण ही होता है। वहाँ चित्रकारिता के लिए कोई स्थान नहीं। शायद इसीलिए उनके निबन्धों में जो विचार प्रकट किए गए हैं वे कभी-कभी अमूर्त भी दिखाई देते हैं। रेणु के निबन्ध पर भी एक आलेख छापा जा रहा है।

भारतीय टी.वी. धारावाहिक के जनक मनोहर श्याम जोशी की पुण्य तिथि पर उनके रचना शिल्प पर एक आलेख दिया गया है। इसके अलावा और भी आलेख और सभी स्थायी सामग्री प्रकाशित की गई है।



मुख्य सम्पादक : कुलश्रेष्ठ कमल

सम्पादक : फरहत परवीन

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार

सम्पादक आजकल

प्रकाशन विभाग,

कमरा नं. 601डी, सूचना भवन,

सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

दूरभाष : 011-24362915

संयुक्त निदेशक (उत्पादन) : डी.के.सी. हृदयनाथ

आवरण सज्जा : बिन्दु वर्मा

आजकल वर्ष भर घर मंगाने के लिए स्कैन करें QR कोड

वार्षिक शुल्क ट्रैकिंग सुविधा के साथ ₹434 और सामान्य डाक से मात्र ₹230

आजकल की सदस्यता लेने, पुराने अंक मँगाने, पत्रिका न मिलने की शिकायत या फिर विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें-

फोन - 011-24367453 (सोमवार से शुक्रवार प्रात: 9:30 से 6:00 बजे तक)

अथवा pdjucir@gmail.com पर ईमेल करें या लिखें-

अभिषेक चतुर्वेदी, सम्पादक (प्रसार),

पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कमरा नं. 779,

सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स,

लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

प्रकाशन विभाग के विक्रय केन्द्रों की सूची पृष्ठ 97 पर

www.publicationsdivision.nic.in

www.facebook.com/publicationsdivision

@DPD_India @dpd_india

ajkalhindi@gmail.com

पत्र





शान्ति का संदेश

जनवरी 2024 अंक मिला। इस अंक में अशोक कुमार सिन्हा द्वारा लिखित 'भारतीय मूर्तिकला की अनुपम कृति : दीदारगंज यक्षिणी' पढ़कर नई जानकारियाँ मिलीं। वास्तव में सिन्हाजी ने मूर्ति और कला का जीवन्त चित्रण अपनी लेखनी के माध्यम से किया है। एक अन्य आलेख में 'फ़िल्मों में आदिवासी' में नायकों का चरित्र-चित्रण विस्तार से रूपचंद गौतम ने किया है। 'प्रसंगवश' के तहत लोगों को नववर्ष की शुभकामनाएँ और शान्ति का सन्देश दिया गया है।

दिसम्बर 2023 अंक में ललित कुमार सिंह द्वारा प्रकाशित आलेख 'कठपुतली कला की परम्परा' पढ़कर अच्छा लगा। आने वाले दिनों में इस तरह का और लेख पढ़ने को मिलेगा, ऐसी आशा है।

अंक की अन्य रचनाएँ भी पसन्द आईं। अगर लघुकथा भी प्रकाशित की जाए तो पत्रिका में चार चाँद लग जाएँ। ग्रामीण संस्कृति से जुड़ी रचनाओं को भी प्राथमिकता के आधार पर प्रकाशित किया जाए।

-शम्भु शरण सत्यार्थी, औरंगाबाद (बिहार)

संवेदनशीलता से परिपूर्ण

जनवरी, 2024 अंक में भारतीय संस्कृति, साहित्य और कला को समर्पित 'आजकल' में 2024 के कैलेंडर में हिन्दी साहित्य के 24 महान विभूतियों का चित्र एवं उनका संक्षिप्त परिचय देकर आपने हम पाठकों पर बहुत उपकार किया है, इसके लिए धन्यवाद! इस कैलेंडर में रामधारी सिंह 'दिनकर' की रचनाएँ 'उर्वशी', 'रश्मिरथी', 'कुरुक्षेत्र', 'संस्कृति के चार अध्याय' थीं, न कि 'मुकुल' और 'वीरों का कैसा हो वसंत'।

इसी अंक में राजीव श्रीवास्तव के आलेख 'संगीत के स्वर्णिम युग का मधुर सुर' के अंतर्गत पार्श्वगायिका सुमन कल्याणपुर के जन्मदिन पर उनके बारे में बहुत-सी जानकारी मिली किन्तु पृष्ठ 88 पर मेरी जानकारी के अनुसार वर्णित 1954 में प्रदर्शित फ़िल्म 'दरवाज़ा' के संगीतकार नौशाद नहीं थे, बल्कि नाशाद थे, जो बाद में पाकिस्तानी फ़िल्म इंडस्ट्री में चले गए। वे शौक़त अली हाशमी उर्फ़ नाशाद थे। नाशाद की भारत में बनी पहली फ़िल्म 'दिलदार' (1947) तथा अन्तिम फ़िल्म 'फ़्लाइंग मैन' (1965) थी।

कविवर हरिवंशराय बच्चन की कविता 'चल मरदाने' बहुत ही प्रेरक और शौर्यपूर्ण लगी। बच्चनजी पर ही 'पुण्यतिथि स्मरण' में 'सृजन जीवन के सोपान' पुस्तक पढ़ने और रखने योग्य है। शमशेर बहादुर सिंह और से. रा. यात्री पर आलेख संवेदनशीलता से परिपूर्ण थे।

-पाण्डेय अजय सिन्हा, पटना (बिहार)

तकनीकी त्रुटि के कारण रामधारी सिंह दिनकर की रचनाओं में सुभद्रा कुमारी चौहान की रचनाओं के नाम छप गए हैं जिसका हमें खेद है। दिनकर की प्रमुख रचनाएँ हैं- 'हुंकार', 'नील कुसुम', 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी', 'उर्वशी', 'संस्कृति के चार अध्याय' आदि।

-'आजकल' टीम

नए स्तम्भ और ज्ञानवर्धक सामग्री के साथ रंगीन छटा

नवम्बर, 2023 अंक नई तरह की पैकिंग में सामने आया तो सिर चकरा गया। जब पुस्तक आकार के लघु 'आजकल' के दर्शन हुए तो दिल बैठ गया। एकाएक मुँह से निकला, "यह क्या हो गया?" दशकों तक पाठक और कुछ वर्ष सम्पादन से जुड़े रहने के कारण आँखें 'आजकल' के जिस आकार की अभ्यस्त थीं, उसके स्थान पर पुस्तक आकार की पत्रिका को पाकर मन उद्विग्न हो गया और जिस पत्रिका की उत्सुकता से प्रतीक्षा रहती थी, उसका कवर तक ध्यान से देखने की इच्छा नहीं हुई। टेबल पर इसे पत्रिकाओं की बजाए पुस्तकों के ढेर में रखना पड़ा। कई दिनों तक यह अपठित पड़ी रही, हालाँकि शीर्ष पर लिखा चिर-परिचित 'आजकल' शब्द यदा-कदा मेरा ध्यान अपनी ओर खींचता रहा। आख़िर एक दिन अचानक पुस्तक उठा ली।

पृष्ठ पलटे तो हर पन्ने पर बिखरी रंगत से हताशा का कोहरा थोड़ा छँट गया। कुछ स्तम्भ पढ़े, एक कहानी और 'प्रसंगवश' पढ़ा जिसमें यह आश्वासन था कि आकार में बदलाव के बावजूद सामग्री में कोई कमी नहीं की गई। कुछ नए स्तम्भ भी उपयोगी लगे। तब तक दिसम्बर अंक आ गया। मन नए आकार के पूरी तरह अनुकूल तो नहीं हो पाया लेकिन रोचक व ज्ञानवर्धक सामग्री तथा नयनाभिराम रंगीन शीर्षक और तस्वीरें देखकर यह अनुभूति अवश्य हुई कि आकार खोकर जो रंगीन छटा बिखरी है, वो कोई महँगा सौदा नहीं। सम्पादक और उनकी टीम को शुभकामनाएँ!

-सुभाष सेतिया, नई दिल्ली

शुभकामनाओं के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। आशा है आगे भी आपका उत्साहवर्धन और मार्गदर्शन मिलता रहेगा। (नोट : श्री सेतिया, 'आजकल' के सम्पादक रह चुके हैं।)

-'आजकल' टीम

पत्रिका का आकर्षण बढ़ा

'पुस्तकें मिलीं' स्तम्भ सराहनीय पहल है। जनवरी 2024 अंक देखा। उत्तरोत्तर पत्रिका का सौन्दर्य एवं आकर्षण बढ़ रहा है। 'महात्मा गाँधी और हिन्दी' आलेख का पुनर्प्रकाशन बहुत अच्छा लगा। गाँधी के विचार वैज्ञानिक और धरातल पर आधारित हैं। वस्तुतः हिन्दी देश की सम्पर्क भाषा और राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है। भारतीय भाषाओं की लिपि यदि एक हो जाए तो भाषा की कोई समस्या है ही नहीं, हिन्दी और उर्दू में कोई फ़र्क़ है ही नहीं, बस लिपि का अंतर है।

-सी.रा. प्रसाद, महेन्द्रू पटना (बिहार)

मूर्धन्य लेखकों का कैलेंडर संग्रहणीय

जनवरी 2024 अंक पढ़ा। सम्पादकीय का सार तत्त्व बच्चन की कविता 'चल मरदाने...' है। शमशेर बहादुर सिंह पर रामदरश मिश्र का पुराना संस्मरण आज भी प्रासंगिक और जीवन्त है। से. रा. यात्री पर उनके सुपुत्र का संस्मरण रोचक है। अशोक वाजपेयी से साधना अग्रवाल की बातचीत वैचारिक और रचनात्मक है। मुक्तिबोध के बारे में काफ़ी जानकारी मिली। 'पुस्तक आजकल' में कस्तूरबा गाँधी की किताब की समीक्षा से उनके त्याग और संघर्ष का पता चलता है। कहानियाँ, कविताएँ, समीक्षा सभी पठनीय हैं। 'आजकल' के जनवरी अंक का कैलेंडर जो हिन्दी के मूर्धन्य लेखकों पर आधारित है, संग्रहणीय है।

-विवेक सत्यांशु, अल्लापुर, प्रयागराज (उत्तर प्रदेश)

अतीत की स्मृतियों में खो गया

जनवरी 2024 अंक पढ़ा। 'प्रसंगवश' स्तम्भ के माध्यम से कई सुपरिचित साहित्यकारों की भावभूमि पर सांकेतिक दृष्टि पड़ी। ख्यातिप्राप्त कहानीकार, उपन्यासकार से. रा. यात्री पर उनके साहित्यिक पुत्र आलोक

यात्री का उनके प्रति दी गई श्रद्धांजलि पढ़कर मन अतीत की स्मृतियों में विचरने लगा। दिवंगत से. रा. यात्री से मेरी पहली मुलाक़ात बाबू लाल जी राय उच्च प्रशासनिक अधिकारी के बंगले पर आज़मगढ़ में, आज़मगढ़ महोत्सव के समय सन् 2009 में सम्भवतः हुई थी। इसके बाद सम्बन्ध पर पसारते गए। उन्होंने मुझे अपना ताज़ा-तरीन उपन्यास शीर्षक 'सुरंग के बाहर' दिनांक 16-9-2010 को हस्तलिखित पत्र के साथ, पंजीकृत डाक द्वारा वाराणसी आवास पर ग़ाज़ियाबाद से भेजी थी जिसमें इसे पढ़कर, उपन्यास कैसा लगा, इस ओर इशारा किया था। से.रा. यात्री सरल, संवेदनशील एवं मानवीय मूल्यों के प्रहरी थे। उनकी स्मृतियों को शत-शत प्रणाम। साहित्यकार और कलाकार अशोक वाजपेयी से भी कुछ वर्ष पूर्व नागरी नाटक मंडली, वाराणसी में बातचीत करने का अवसर प्राप्त हुआ था, जब वह एक साहित्यिक समारोह में आए थे।

राज शेखर की रचना पढ़कर हरिवंशराय बच्चन का 'दशद्वार से सोपान' के सन्दर्भ में उनके द्वारा भेजा गया अंतर्देशीय पत्र बहुत याद आया। इसे पढ़कर कभी मैंने उनके जीवन काल में पत्र भेजा था। दुर्भाग्यवश वह पत्र कहीं समय की आँधी में गुम हो गया है।

'आजकल' द्वारा इस अंक में संलग्न साहित्यिक कैलेंडर 2024 के लिए बधाई। कुल मिलाकर पत्रिका पठनीय, संग्रहणीय एवं प्रशंसनीय है।

-वेद प्रकाश पाण्डेय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

आकर्षक लुक ने मन मोह लिया

मैं 'आजकल' का नियमित पाठक हूँ। जनवरी 2024 अंक जब देखा तो देखते ही रह गया क्योंकि इसके आकर्षक लुक ने मन मोह लिया। एक बारगी तो लगा ही नहीं कि यह 'आजकल' पत्रिका है। 18 जनवरी, को हरिवंशराय बच्चन की पुण्य तिथि के अवसर पर 'चल मरदाने' कविता 'पुण्यतिथि स्मरण सृजन-जीवन के सोपान' ने ज्ञानवर्धक जानकारी दी। 'बीता कल' के तहत 30 जनवरी पर विशेष 'महात्मा गाँधी और हिन्दी' भी मनभावन लगी।

-आबिद मजीद इराकी, जहानाबाद (बिहार)

पूरा अंक पठनीय

सुधीर तैलंग की कथा हास्य में रुदन है। 'वातायन' में स्पिटेलर की कविताओं का अनुवाद भावशून्य भाषांतर ही था। कहीं भी कविता की लय नहीं थी।

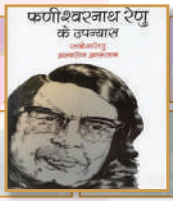
निरालाजी पर लेख अच्छा था। अंत में निराला का चित्र तो ऐसा लगा जैसे किसी देवता की मूर्ति। पूरा अंक ही पठनीय था। बधाई!

-राजू मेहता, जोधपुर (राजस्थान)

कथ्य और शिल्प में समृद्ध ओडिया कहानी

जनवरी 2024 का अंक नए कलेवर में प्रशंसनीय है। मैं 'आजकल' का 1974 से ही नियमित पाठक हूँ। सदैव इसे पढ़कर आनंदित होता रहा हूँ। शमशेर बहादुर सिंह विषयक रामदरश मिश्र का लेख, से.रा. यात्री के पुत्र द्वारा पिता का संस्मरण तथा हरिवंश राय बच्चन का 'पुण्यतिथि स्मरण' स्तरीय है। मन को सुकून देता है। शिवकुमार यादव और यशोधरा मिश्र की ओडिया कहानी (राजेंद्र प्रसाद मिश्र द्वारा अनुदित) अपने कथ्य और शिल्प से समृद्ध है। 'खूँटे की कस्टडी' बेजान है। पत्रिका में काव्य का पृष्ठ और बढ़ना चाहिए, जिससे नवगीत, दोहे, कविता आदि को उचित जगह मिल सके। 'भारतीय मूर्तिकला...' ज्ञानवर्धक लेख है। अन्य स्तम्भ भी पठनीय हैं। नए कलेवर का स्वागत है।

-माँगन मिश्र 'मार्त्तण्ड', फ़ारबिसगंज (बिहार)



जन्मदिवस पर विशेष

फणीश्वरनाथ रेणु के निबन्ध

फणीश्वरनाथ 'रेणु' आधुनिक समाज की समस्याओं का मूल कारण शिक्षा और साहित्य के विलगाव में ढूँढते हैं। विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला की 'सिपाही' एवं ताराशंकर बंद्योपाध्याय की 'रायकमल' कहानियों का विश्लेषण करते हुए वे आधुनिक शिक्षा की ख़ामियों को दर्शाते हैं।



अंजली एस.
ई-मेल : anjalijiothish@gmail.com

भारतीय ग्रामीण जीवन के यथार्थ को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करनेवाले कथाकार के रूप में फणीश्वरनाथ रेणु हमारे लिए चिर-परिचित हैं लेकिन एक निबन्धकार के रूप में वे बहुत ही कम चर्चित हुए हैं। यह शायद इसलिए कि उनका कथाकार व्यक्तित्व उनके सृजनात्मक व्यक्तित्व पर हावी हो गया था।

रेणु के आठ निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। उनकी सम्पूर्ण रचनावली के पाँचवें भाग में संकलित इन निबन्धों की मुख्य धुरी है व्यक्तित्व निर्माण तथा राष्ट्र निर्माण। शिक्षा, साहित्य, कला, राजनीति जैसे सभी तत्त्व इस महान लक्ष्य की पूर्ति के उपकरण मात्र हैं। उनके निबन्धों को पढ़ते हुए हमें ऐसा महसूस होता है कि उनमें अभिव्यक्त सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, साहित्यिक तथा व्यक्तित्व विकास सम्बन्धी जो भी विचार हैं, वे उत्तरोत्तर प्रासंगिक होते आ रहे हैं।

व्यक्तित्व : 'सामाजिक कार्यकर्ताओं से दो शब्द', 'राष्ट्र निर्माण में लेखक का सहयोग' तथा 'वह एक कहानी' ये तीनों निबन्ध व्यक्ति निर्माण के विभिन्न चरणों का विश्लेषण करने वाले हैं। 'सामाजिक कार्यकर्ताओं से दो शब्द' को इसके प्रथम चरण के रूप में देख सकते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी

है। इसलिए रेणुजी ने यह बताने का प्रयास किया है कि व्यक्ति का विकास मात्र उसके शारीरिक या अन्य भौतिक आवश्यकताओं की प्राप्ति से सम्भव नहीं। मनुष्य के मन और बुद्धि की क्षमता इन्द्रियों की क्षमता के परे की है। यदि व्यक्ति का और उससे संचालित समाज का विकास ही हमारा लक्ष्य है तो उसे मानसिक तथा बौद्धिक उन्नति की ओर ले जाना होगा। मन और बुद्धि के संयोग से प्राप्त आंतरिक शक्ति व्यक्ति को अपने पैरों पर खड़े होने के लिए सक्षम बनाती है। स्वस्थ पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण में पला व्यक्ति स्वाभाविक रूप से यह संतुलन प्राप्त कर लेगा ही। इसमें जब कभी कमी हो तो व्यक्ति अपना संतुलन खो बैठेगा।

आज का समाज जिन समस्याओं का सामना कर रहा है उनमें से प्रमुख और सबसे ख़तरनाक समस्या है मानसिक दृढ़ता की कमी। इसीलिए सामाजिक कार्यकर्ताओं का यह दायित्व बनता है कि वे प्रत्येक व्यक्ति के लिए सहारा बनें। रेणुजी ने 1945 में 'सामाजिक कार्यकर्ताओं से दो शब्द' नामक जो लेख लिखा था, उसमें जिन ख़ामियों की चर्चा की गई थी, वे पिछले 75 सालों में उत्तरोत्तर बढ़ती हुई नज़र आ रही हैं।

इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए लेखक बताते हैं कि भारतीय समाज ने व्यक्ति की इन आवश्यकताओं की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया, जबकि विदेशों में कम-से-कम पिछले 200 सालों से इसका प्रावधान मौजूद है। इस तथ्य की पुष्टि करने के पहले हमें पाश्चात्य और भारतीय सामाजिक ढाँचे की ओर ध्यान देना होगा। भारतीय समाज हमेशा व्यक्ति के सम्बन्धों को बड़ा महत्व देते आए हैं। 'बहुजन हिताय' की भावना से सिंचित ऐसे एक समाज में व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए कोई स्थान नहीं था। संयुक्त परिवार का ढाँचा प्रत्येक व्यक्ति में त्याग और सेवा की भावना को जगाने में सक्षम था। किसी भी बच्चे के लिए अपना पड़ोसी चाचा-चाची या काका-काकी था। मनुष्य के व्यवहार में हर कहीं एक प्रकार का अपनापन झलकता था। ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे का सहारा बन सकता था। जीवन मूल्यों, त्याग एवं सेवा भावों से पोषित समाज में जीवन का लक्ष्य कभी भी भौतिक उन्नति मात्र नहीं होगी। आपसी विश्वास से परिचालित, उदार सामाजिक ढाँचे में मन की बीमारी के लिए कोई जगह ही नहीं उठती थी लेकिन परिस्थितिवश आजकल इस सामाजिक ढाँचे में बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है। इस तथ्य को हम अनदेखा नहीं कर सकते। व्यक्ति की आत्मकेंद्रिता ने अणु परिवारों को जन्म दिया। पारिवारिक



फणीश्वरनाथ 'रेणु'
(4 मार्च, 1921 - 11 अप्रैल, 1977)

विघटन या मानवीय सम्बन्धों का विघटन व्यक्ति में कई तरह के संघर्षों का कारण बना। अकेलापन, कुंठा, संत्रास आदि के घेरे में बंधे एक-दूसरे पर शक करने वाले अपनों के बीच आज हमें मनःशान्ति के लिए बाहरी स्रोतों को ढूँढना पड़ रहा है। इस स्थिति की ओर लेखक हमारा ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। विभिन्न क्षेत्रों में दूसरों का सहारा बनने लायक विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों की आवश्यकता की ओर भी वे इशारा करते हैं।

साहित्य एवं लेखक की भूमिका : व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के तहत समाज और राष्ट्र के विकास सम्बन्धी चिन्तन, रेणुजी के निबन्धों की धुरी है। राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में साहित्य एवं सृजनात्मक प्रतिभाओं की भूमिका पर भी वे ज़ोर देते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले परतन्त्रता सबसे बड़ी समस्या रही तो घुटनों के बल चलते भारत का नवनिर्माण स्वाधीन भारत की सबसे बड़ी चुनौती बनी। रेणुजी के मत में प्रत्येक नागरिक के मानसिक तथा बौद्धिक विकास से ही राष्ट्र का नवनिर्माण सम्भव हो सकता है। इसके लिए गाँधीजी जैसे महान नेता के त्याग और सेवा, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'प्रवीण चिन्तन' एवं 'मोह-मुक्त बुद्धि' के आदर्शों को जन मन में जगाना होगा। इनसे विचलित, स्वार्थता से परिचालित आज के राजनैतिक नेतृत्व की ओर इशारा करते हुए रेणुजी बताते हैं, "लोक नायकों के जनकल्याण की परिकल्पना में बुद्धि को जाग्रत करने का अभिप्राय कहीं नहीं मिलता... जनसाधारण के सूखते हुए मनन स्रोत की ओर हमारे राष्ट्रनायकों का ध्यान कभी नहीं गया।"

('राष्ट्र निर्माण में लेखक का सहयोग', 'रेणु रचनावली', भाग-5, पृ. 268)।

इनके सूखते हुए मनन स्रोतों को उर्वर बनाना आज के साहित्यकार का दायित्व है। इसी मुद्दे को एक प्रार्थना के रूप में गुरुदेव ने 'गीतांजली' में शब्दबद्ध किया है, "Where the mind is without fear" वाले गीत में वे कहते हैं, "जहाँ विश्व छोटी-छोटी दीवारों से घिरे टुकड़ों में न बिखरे हों, हे परम पिता! उस स्वतन्त्रता की ओर मेरे देश को जगाएँ" (रवीन्द्रनाथ टैगोर - 'गीतांजलि' अंग्रेज़ी संस्करण) गीत 35.

'Where the world
has not been broken into fragments
by narrow domestic walls,
into that heaven of freedom,
my father, let my country awake!'

व्यक्ति में इन मूल्यों को जगाने का दायित्व लेखक का है, वही साहित्य का लक्ष्य होना चाहिए। यह विदित है कि स्वाधीन भारत के बारे में जब वे बात करते हैं, वह 'भारत' नामक एक भूप्रदेश की स्वाधीनता को लेकर नहीं बल्कि प्रत्येक भारतीय के मन की स्वाधीनता या मोहमुक्तता की ओर इशारा है। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने 'स्वाधीनता' और उसका समानार्थी अंग्रेज़ी शब्द 'इन-डिपेंडेंस' ('नाख़ून क्यों बढ़ते हैं'- आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी) के बीच के भेद का जो विश्लेषण किया है, उससे हम परिचित हैं। रेणुजी के अनुसार 'स्व अधीनता' का एकमात्र उपाय है 'अविरत आत्मानुसंधान'। भारतीय परम्परा ने 'अपनी

बुद्धि को प्रचोदित करने' (धियो यो नः प्रचोदयात् गायत्री मन्त्र, 'यजुर्वेद', अध्याय 36, भाग 3), की जो प्रार्थना हमें सिखाई थी, उसे बाद में हमने कहीं खो दिया। रेणुजी के मत में जनसाधारण के चिन्तन को सही मार्ग पर ले आने के लिए और उनमें अंतर्निहित शक्ति को संगठित कर राष्ट्र निर्माण में प्रवृत्त कराने के लिए लेखक और कलाकार की सहयोगिता अनिवार्य है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कमी : वैज्ञानिक आविष्कारों ने ज़रूर हमारे जीवन को सरल और सुगम बनाया है लेकिन जनसाधारण में वैज्ञानिक दृष्टि रूपायित करना और उसके द्वारा वैज्ञानिक चिन्तन को जगाना राष्ट्र निर्माण का अनिवार्य चरण है। उनके ही शब्दों में, "सर्वसाधारण के बीच विज्ञान का प्रसाद वितरण करने से कुछ नहीं होगा, जनसाधारण में वैज्ञानिक दृष्टि को खोलने की आवश्यकता है..विद्युत आलोक से गाँव-गाँव की गली-गली को आलोकित करने का क्या अर्थ जबकि सर्वजन के मन के कोटर में चिर अंधकार बद्धमूल हो रहा है?" ('राष्ट्र निर्माण में लेखक का सहयोग', 'रेणु रचनावली', भाग-5, पृ. 268)

इस समस्या की जड़ों को वे शिक्षा और साहित्य के विलगाव में खोजते हैं। उनके अनुसार शिक्षा और साहित्य का अभिन्न सम्बन्ध होते हुए भी दुर्भाग्यवश देश में अभी तक उसका प्रत्यक्ष प्रयोग नहीं हुआ है। इसके लिए तटस्थ दृष्टि वाले लेखकों और साहित्यकारों की ज़रूरत है। सत्ता और लेखकों के बीच की गुटबंदी, नौकरशाही का हस्तक्षेप आदि साहित्यकार को अपने दायित्व से विचलित करते हैं। वे बताते हैं, "व्रत तोड़कर वृत्ति स्वीकार करने के बाद क़लम, नस्लन-बाद-नस्लन पुष्ट होते हुए फ़ाइलों के दस्तावेज़ों की नक़ल करने में ही घिसती है। हमारा प्रचार साहित्य इसी का प्रमाण है।" (वही, पृ. 271)। उनके अनुसार राष्ट्र को नई प्रेरणा प्रदान करने का दायित्व लेखकों के ऊपर है। आंतरिकता शून्य उपदेशों का कोई फल नहीं होगा। जन-जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले साहित्य एवं रचनाएँ ही राष्ट्र को नई प्रेरणा देते हुए नवनिर्माण की ओर जनता को अग्रसर कर सकते हैं।

अधूरी शिक्षा : जैसे कि पहले सूचित किया था, रेणुजी आधुनिक समाज की समस्याओं का मूल कारण शिक्षा और साहित्य के विलगाव में ढूँढते हैं। विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला की 'सिपाही' एवं ताराशंकर बंद्योपाध्याय की 'रायकमल' कहानियों का विश्लेषण करते हुए वे आधुनिक शिक्षा की ख़ामियों को दर्शाते हैं। 'सिपाही' का नायक निस्संग और निर्मम होकर अपने जीवन प्रवाह को देखने वाला गोरखा सिपाही है। जीवन के हर पल का आस्वादन करने वाला अशिक्षित पर अत्यंत व्यावहारिक फ़ौजी सिपाही का व्यक्तित्व सुशिक्षित और सभ्य कहलाने वाले समाज के ऊपर करारा व्यंग्य छोड़ता है और हमें आत्मविश्लेषण के लिए मजबूर करता है। पहाड़ी यात्रा पर उसको साथ दिए राजनीति विज्ञान का विद्यार्थी जीवन यथार्थ के सामने चौंककर खड़े होने वाले सुशिक्षित नई पीढ़ी का प्रतिनिधि है। आजकल की औपचारिक शिक्षा व्यक्ति में

व्यक्तित्व को गढ़ने और उसे व्यावहारिक बनाने में असफल रहती है। यह साहित्य और शिक्षा के विलगाव का ही परिणाम है, इसमें कोई संदेह नहीं। यहाँ रेणुजी साहित्य, शिक्षा एवं व्यक्तित्व विकास सम्बन्धी अपने उदात्त चिन्तन को प्रस्तुत कर रहे हैं।

साहित्य सम्बन्धी दृष्टिकोण : 'सिपाही' एवं 'रायकमल' कहानी के माध्यम से वे एक कालजयी रचना सम्बन्धी अपनी धारणा को अत्यंत सरल ढंग से व्यक्त करते हैं। कालजयी रचना वह होती है जिसको पढ़ते हुए हर बार कुछ नई अनुभूति होती है। उनके मत में जो रचनाकाल और पाठक के अनुभवों के साथ मिलकर आस्वादन के नए-नए परतों को खोल देती है, वही कालजयी होती है। ऐसी रचनाएँ हमें जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए सक्षम बनाती हैं। हमारे क़दम-से-क़दम मिलाकर हमें धरती की कठोर वास्तविकता से जूझते हुए आगे बढ़ने की प्रेरणा देती हैं। इस निबन्ध को पढ़कर हमें ऐसा लगता है कि रेणुजी अपने जीवन दर्शन को ही इसमें उभार रहे हैं। सन् 1936-37 के आस-पास की भारतीय कहानियों पर रूसी-फ्रेंच यथार्थवादी साहित्य का जो प्रभाव पड़ा और आगे चलकर इसी नाम पर आधुनिकतावाद और यथार्थवाद का लेबल लगाकर जो निम्न स्तर की रचनाएँ करने की प्रवृत्ति चल पड़ी उस पर उन्होंने करारा व्यंग्य किया है।

जनता से जुड़े हुए साहित्यकार समाज-कल्याण के सपने देखते हैं और जनता को उसी मार्ग की ओर अग्रसर करा लेते हैं। 'उतरी स्वप्न परी हरी क्रान्ति' नामक निबन्ध के माध्यम से रेणुजी साहित्यकार के इसी स्वप्नदृष्टा और सृजनकर्ता रूप को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। 'यथास्मै रोचते विश्वं तथेतं परिवर्तते (अग्नि पुराण 339/10; ध्वन्यालोकम् – आनन्दवर्धन, उद्योत -3)' - अर्थात् जिस प्रकार कवि इस विश्व को देखना चाहते हैं, उसी प्रकार उसमें परिवर्तन होते हैं। कवि की कल्पनाशीलता और सृजनशीलता पर आधारित यह कथन इस सन्दर्भ में खरा उतरता है। रेणुजी का



लेखक : भारत यायावर
पृष्ठ : 197; मूल्य : 120 रुपये

प्रकाशन विभाग द्वारा 'फणीश्वरनाथ रेणु : व्यक्तित्व और कृतित्व' प्रकाशित की गई है। इस पुस्तक में रेणु के सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व पर गहराई से पड़ताल की गई है।
पुस्तकें ख़रीदने और सूची देखने के लिए प्रकाशन विभाग की वेबसाइट publicationsdivision.nic.in देखें
वेबसाइट पर जाने के लिए QR कोड स्कैन करें।

कथा साहित्य ग्रामाँचल के प्रति अपने प्यार एवं उसके बारे में देखे जाने वाले सपनों का पुँज है। मात्र अपनी कल्पना शक्ति और सकारात्मक दृष्टिकोण से बंजर धरती को हरी-भरी धरती बनाने का जो सपना उन्होंने देखा उसे 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' के माध्यम से उन्होंने पाठकों को दिखा दिया। कोसी नदी पर बने बाँध के माध्यम से अपने सपनों के साकार होने का वर्णन इस निबन्ध में हम देख सकते हैं।

'पतियाते हैं तो मानिए आँचलिकता भी एक विधा है' नामक निबन्ध में रेणुजी आँचलिकता और श्रेष्ठ साहित्य सम्बन्धी अपनी अवधारणा को व्यक्त करते हैं। रूसी लेखक मिखाइल शोलोखोव, नॉर्वीजियन लेखक हैमसुन, अमरीका के विलियम फाकनर, यूगोस्लाविया के इरवा आँद्रीच जैसे लेखकों की मिट्टी की महक से भरपूर महान रचनाओं का उल्लेख करते हुए वे यह स्थापित करते हैं कि ग्रामीण जीवन के सौन्दर्य और विद्रूपताओं को उभारने वाली आँचलिक रचनाओं को विश्वभर में स्वीकृति प्राप्त है। उनके ही शब्दों में 'समष्टि की कहानी सुनाते समय व्यष्टि के चित्रांकन में तनिक भी उपेक्षा नहीं करना।' (पतियाते हैं तो मानिए आँचलिकता भी एक विधा है, 'रेणु ग्रंथावली' भाग-5, पृ. 281)

आँचलिकता समष्टि में समाहित व्यष्टि को प्रधानता देती है। शायद इसलिए ही उनके उपन्यासों में अँचल विशेष नायक बने हैं। राकेशरेणु के अनुसार, "अँचल विशेष का नायकत्व उनकी रचनाओं में उभरने वाली जनतान्त्रिक चेतना की अभिव्यक्ति है।"

लेखकों और साहित्यिक रुझानों को बनाने और मिटाने की क्षमता रखने वाले आलोचकों की गुटबन्दी पर वे खुलकर आक्रमण करते हैं। साहित्यकार अपनी अनुभूतियों को सहज प्रतिभा के माध्यम से शब्दबद्ध करते हैं तो पाठक और आलोचक अपने जीवनानुभवों के साथ सम्बद्ध कर उसका आस्वादन करते हैं। इसीलिए आस्वादन प्रक्रिया लेखकीय एवं पाठकीय अनुभवों का समन्वित रूप बनता है। वास्तव में कृति को बोधगम्य बनाते हुए, उसके निहितार्थ को अनावृत करना और आस्वादन प्रक्रिया में सहारा देना आलोचक का दायित्व है। इसके लिए आलोचक को तटस्थ होना भी अनिवार्य है। जब वह पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो अपनी दृष्टि और आदर्शों को प्रतिष्ठित करना चाहता हो तो उसका आलोचकीय बिम्ब बिखर जाएगा।

'जन-जागरण में साहित्य की भूमिका' नामक निबन्ध में रेणुजी के राजनैतिक दृष्टिकोण एवं क्रान्तिकारी व्यक्तित्व उभर आए हैं। आज़ादी के महान लक्ष्य की प्राप्ति के साथ-ही-साथ राजनीति में मूल्यों का ह्रास भी होने लगा। जातीयता के नाम पर ख़ेमों में बँटे हुए कार्यकर्ताओं का चित्रण 'मैला आँचल' में हम देख सकते हैं। गाँधीजी ने स्वतन्त्रता की जो संकल्पना की थी, वह इस प्रकार की थी, "जब तक दरिद्र से दरिद्र निम्नतर श्रेणी के भारतीय को भी स्वाभिमान और आत्मविश्वास के साथ मनुष्य के रूप में जीने का अवसर प्राप्त नहीं होता तब तक हम यह नहीं मान सकते कि भारत स्वतन्त्र है।

रेणुजी सर्वप्रथम एक क्रान्तिकारी

व्यक्तित्व हैं। उनकी राजनैतिक पक्षधरता एक आदर्शनिष्ठ क्रान्तिकारी की समझौता-विहीन दृष्टि की उपज है। 'भारत छोड़ो आंदोलन' से लेकर नेपाल क्रान्ति, जयप्रकाश नारायण की सोश्यलिस्ट विचारधारा- इन सबसे होकर, उन अनुभवों को संजोकर ही वे लेखन कार्य में प्रवृत्त हुए थे। उन्हीं अनुभवों की पूँजी से साहित्य क्षेत्र में उन्होंने अपनी जगह बना ली थी। 'सिर्फ़ कलम से नहीं काया से भी कुछ लिखना ज़रूरी है..मैं आंदोलन में शरीक नहीं हुआ, बल्कि आंदोलन मेरे अंदर समा गया" (वही, पृ. 288- अपने क्रान्तिकारी सूरत को वे यूँ अभिव्यक्त करते हैं। उनकी दृष्टि तटस्थ है, मात्र सामाजिक प्रगति को लक्षित करने वाली है।

अपने अन्तिम दो निबन्ध 'उलझे हुए रिश्ते सुलझे हुए विचार', 'तीसरी कसम को जान-बूझकर फ़ेल कर दिया गया था'- हिन्दी फ़िल्मी क्षेत्र में बढ़ती हुई व्यावसायिकता, गुटबन्दी, साज़िश आदि पर केन्द्रित हैं। सिनेमा मनोरंजन की आधुनिकतम विधा है। कला, साहित्य एवं प्रौद्योगिकी का सुन्दर समन्वय उसे सर्वाधिक लोकप्रिय बनाता है। समाज को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले एक माध्यम के रूप में उसका सामाजिक दायित्व भी बहुत बड़ा है लेकिन पूँजी निवेश की सम्भावनाओं ने सिनेमा को एक कलात्मक विधा से अधिक व्यवसाय के रूप में परिवर्तित किया। सिनेमा की व्यावसायिक दृष्टि जनता की रुचि को निचले स्तर के मनोरंजन तक ले जाने का सचेत प्रयास कर रही है। सामाजिक यथार्थ को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करने के साथ कृत्रिम सौन्दर्य, चमक-दमक और वायवीय रूमानियत को गढ़ने की संस्कृति इसमें बढ़ रही है। रेणुजी के ही शब्दों में, "आजकल तो कुछ फ़िल्म वाले अपनी फ़िल्मों में ऐसी चीज़ें दिखाते हैं जो आम आदमी से हटकर है, अस्वाभाविक है। उनका कहना है कि जो ज़िन्दगी में है उसे पब्लिक क्यों देखना चाहेगी भला! जो नहीं है, वहीं तो देखना चाहेगी" ('उलझे हुए रिश्ते सुलझे हुए विचार', 'रेणु रचनावली', भाग-5, पृ. 291)! जो लेखक और फ़िल्मकार इससे समझौता नहीं कर पाते हैं, उन्हें फ़िल्मी जगत में कोई स्थान नहीं मिलेगा।

रेणुजी के कथासाहित्य में ग्रामीण अँचलों की सुन्दरता एवं कुरूपता दोनों शामिल हैं। अँचलों के माध्यम से वे वास्तव में ग्रामवासिनी भारत माँ के यथार्थ को ही प्रस्तुत कर रहे हैं। उनका लक्ष्य है प्रत्येक व्यक्ति की प्रगति और उसके द्वारा राष्ट्र निर्माण। व्यष्टि के अंदर समष्टि के विकास को परखना उनके साहित्य की विशेषता है। समाज कल्याण की यह भावना रेणुजी के निबन्धों में भी अभिव्यक्त हुई है। रेणुजी शब्दों के चित्रकार हैं, लेकिन निबन्ध ऐसी एक विधा है जिसमें ज़्यादातर तथ्यों का पुष्टीकरण ही होता है। वहाँ चित्रकारिता के लिए कोई स्थान नहीं। शायद इसीलिए उनके निबन्धों में जो विचार प्रकट किए गए हैं वे कभी-कभी अमूर्त भी दिखाई देते हैं। उनके कथासाहित्य की तुलना में निबन्ध के कम चर्चित होने का कारण भी शायद यही होगा। ❑



'आजकल' मार्च 2007 अंक से

महादेवी वर्मा का रचना संसार

रेखाचित्रों में महादेवी की अनुभूति मात्र प्रणयिनी की अनुभूति नहीं है, उसमें माँ की ममता है, बहन का प्रेम है और है नारी की कोमल काया के भीतर हृदय की अनुभूति की कोमल अभिव्यक्ति। जन-जीवन में व्याप्त दुख, दैन्य, अशिक्षा, उत्पीड़न, अभाव आदि के प्रति विराट सहानुभूतिपूर्ण करुणा और ममता के साथ-साथ कहीं-कहीं विद्रोह भी है, जो करुणा और ममता से ही अभिभूत है।

रघुनाथ उपाध्याय 'शलभ'

आधुनिक हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग की कविताओं का स्वरूप मुख्यतः नैतिकतावादी एवं सुधारवादी ही बना रहा। इतिवृत्तात्मक शैली में समकालीन कवियों ने सर्जनात्मक स्तर पर विशेष रूप से सुधारवादी दृष्टिकोण ही अपनाया, जिनमें उपदेशात्मक प्रवृत्ति विद्यमान रही। यह प्रवृत्ति कुछ दिनों तक बड़ी तीव्र गति से चली किन्तु आगे चलकर इस इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया भी हुई, जिसके फलस्वरूप साहित्य में सर्जनात्मक बदलाव आया। काव्य के क्षेत्र में स्वानुभूति और सूक्ष्म भावानुगामिनी काव्यधारा का विकास हुआ। विश्वबंधुत्व, सर्वचेतनावाद और सर्वात्मवाद जैसे दार्शनिक तथ्य कविता में उभरकर सामने आए और मानवीय एवं सांस्कृतिक धरातल पर नई काव्यधारा के रूप में एक नए काव्य युग का सूत्रपात हुआ, जिसे 'छायावाद' के नाम से साहित्य में प्रतिष्ठा मिली।

आरंभ में अपनी अस्पष्टता को लेकर छायावाद आलोचकों की दृष्टि में काफ़ी विवादित बना रहा, किन्तु धीरे-धीरे स्थिति स्पष्ट होती गई और साहित्य के धरातल पर छायावाद समग्र नवीनता के साथ स्थापित हुआ। वस्तुतः छायावाद परम्परा और प्रयोग का अंतर्विरोध ही था, जो कथ्य और शिल्प के स्तर पर पूर्णतः नवीन था। सर्जनात्मक स्तर पर कवियों के दृष्टिकोण मानव की आशा-आकांक्षा, संवेदना-संघर्ष, देशभक्ति एवं राष्ट्रीय

चेतना से सम्बद्ध होकर पहली बार विशुद्ध मानवीय एवं सांस्कृतिक धरातल पर खुलकर सामने आए। इस काव्य आंदोलन के जन्म से लेकर विकास तक गति प्रदान करने वालों में प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा की मुख्य भूमिका रही। 'छायावाद' के ये ही चार मुख्य स्तम्भ रहे। इन चार स्तम्भों में महादेवी वर्मा विशुद्ध रूप से छायावादी बनी रहीं।

दो किनारों में आबद्ध महादेवी वर्मा की साहित्य सरिता अविरल गति से प्रवाहित है अपनी एक गति और एक लय में। उसमें कहीं उफान नहीं, कहीं तूफ़ान और हाहाकार नहीं। उसकी अतल गहराई में सिर्फ़ करुणा और वेदना ही विद्यमान है। शान्तभाव में लीन जीवन की सच्चाई को तलाशने की अनवरत साधना में वे चिर निमग्न बनी रहीं। इस साधना में वे काव्य-कृतियों के साथ-साथ गद्य कृतियों की रचना भी करती रहीं, जिसमें चिरंतन सत्य को पाने की अभिलाषा एवं संवेदना का सत्य सन्निहित है।



महादेवी वर्मा
(26 मार्च, 1907 - 11 सितम्बर, 1987)

महादेवी वर्मा की कविताओं में प्रकृति की विराट चेतना से उद्‌भुत असीम की जिज्ञासा के साथ-साथ आत्मा के सम्पूर्ण समर्पण का अनुसंधान भी विद्यमान है। काव्य सम्बन्धी उनकी मान्यता चिरन्तन है जिसका निर्वाह वे जीवनपर्यंत करती हैं। काव्य सम्बन्धी उनकी धारणाएँ युगीन प्रभावों से टकराकर अपना मार्ग नहीं बदलतीं। उनके काव्य विकास में 'पन्त' अथवा अन्य छायावादी कवियों की भाँति क्रमिक परिवर्तन नहीं हुआ। उनका कवि-व्यक्तित्व अपना निजत्व हर काल और हर परिस्थिति में बनाए रखा। उनकी काव्य कृतियों की शृंखला की शुरुआत 'नीहार' से होती है, जो 1930 में पहली कड़ी के रूप में अपना अस्तित्व ग्रहण करती है।

'नीहार' उनका प्रथम प्रकाशित काव्य संकलन है, जिसमें आशा-आकांक्षा, सुख-दुख के धूप-छाँव में जीवन की यथार्थता को समझने का प्रयास किया गया है। 'नीहार' में जीवन की नश्वरता, सांसारिक अस्थिरता, वेदना और करुणा को अपनाकर गीतों को महादेवी ने जन्म दिया है जिसमें भावुकता का पर्याप्त विकास नज़र आता है। कविताओं का कलात्मक सौन्दर्य गीत की दृष्टि से अत्यंत रमणीक बन पड़ा है। गीतों से एक ऐसा सहज संगीत फूट पड़ा है, जिसमें हृदय-वीणा की अपूर्व झंकार सुनाई पड़ती है। कविताओं में रहस्यवाद प्रथम बार ही उभरकर अपनी छायावादी प्रवृत्ति का परिचय प्रस्तुत करता है। उसमें कवयित्री के काव्य की एक रूपरेखा बनती नज़र आती है। छन्दों में एक अव्यक्त पीड़ा का हल्का आभास मिलता है, किन्तु उसका कोई स्थिर रूप नहीं दिखाई देता। असीम में खो जाने की एक चाह गीतों में उभरती नज़र आती है, जिसमें कहीं कुछ दूर की पुकार है, पवन के झकोरे हैं, लहरों की करवटें हैं और सितारों का स्नेहिल संदेश भी। 'जब असीम से हो जाएगा मेरी लघु सीमा का मेल' कहकर चरम सत्य को पाने में ही महादेवी अपनी काव्य-सार्थकता समझती

हैं। मिलन की असीम आकांक्षा उनके मन में जन्म लेती है, किन्तु नारी सुलभ लज्जा का साम्राज्य उनके अंतर्मन में सदा बना रहता है-

'हे नभ की दीपावलियो, तुम पल भर को बुझ जाना
मेरे प्रियतम को भाता है, तम के परदे में आना।'

महादेवी की काव्य-शृंखला की दूसरी कड़ी के रूप में 35 गीतों के एक संकलन ने 1932 में अपना आकार ग्रहण किया। जिसने 'रश्मि' के नाम से छायावाद को समृद्ध बनाया। इसमें 'नीहार' की अपेक्षा कवयित्री की काव्य-साधना अधिक प्रौढ़ और पुष्ट होकर निखरी। गीतों में व्यथा को संगिनी बनाकर जीने का भाव व्यक्त हुआ है। 'रश्मि' की भूमिका में कवयित्री ने अपने दुःखवाद का संदेश यों दिया है- "सुख और दुःख के धूपछाहीं डोरों से बने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के लिए आश्चर्य का कारण है। संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, परन्तु उस पर दुःख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।" रश्मि में उनका यही दुखवाद तीव्र हो उठा है। इसमें उनका रहस्यवाद भी सन्निहित है।

1934 में महादेवीजी का तीसरा काव्य-संकलन प्रकाशित हुआ जिसमें 58 गीत संगृहीत हैं। 'नीरजा' नाम से प्रकाशित यह काव्य-संकलन छायावाद की एक मुख्य घटना थी। महादेवीजी के काव्य-संचरण का यह तीसरा सोपान था, जिसमें कवयित्री के वेदनाकुल अस्तित्व की कहानी विद्यमान है। इसमें प्रणय का प्रकाशन, सौन्दर्य की लालसा, अश्रु-प्रवाह और हृदय की भावमयी अभिव्यंजना है। चिन्तन अधिक प्रौढ़ होने के कारण आस्था और विश्वास के भाव सघन हुए हैं। आत्मा-परमात्मा की प्रेम-व्यंजना से काव्यात्मक गहराई का परिचय मिलता है- 'बीन भी हूँ मैं, तुम्हारी रागिनी भी हूँ
'दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ।'

'नीरजा' की मूल भावना का यथार्थ परिचय 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' शीर्षक कविता से मिलता है, जिसमें प्रियतम के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव मुखरित हुआ है- 'युग-युग प्रतिदिन-प्रतिक्षण-प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर
सौरभ फैला विपुल धूप बन
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन।'

'सांध्यगीत' उनका चौथा काव्य-संकलन है, जो 1936 में प्रकाशित हुआ। इसमें 'नीरजा' के भाव-विस्तार के साथ अनुभूति की सघनता व्याप्त है। इसमें विरह का अभिशाप वरदान बन गया है और जीवन में निर्द्वंता का संसार सृजित हुआ है। इतना ही नहीं, जीवन और मृत्यु का पार्थक्य भी मिट-सा गया है। गीतों में भावुकता के साथ-साथ चिन्तन की गम्भीरता भी विद्यमान है और वेदना मधुमय राग से अनुरंजित हो उठी है। दार्शनिक एकाग्रता के उच्चतर बन जाने से रहस्यभावना प्रधान हो चली है। फिर भी 'प्रसाद' के 'आँसू', 'निराला' की 'स्मृति' जैसी उदात्तता और एकतानता तथा 'पन्त' के 'पल्लव' जैसी सौन्दर्यानुभूति महादेवी में नहीं है, किन्तु उनमें वेदना का जो विन्यास और विवृत्ति है, वह तीनों कवियों में नहीं है।

1942 में महादेवी वर्मा का पाँचवाँ और अंतिम काव्य-संकलन 'दीपशिखा' नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें 'दीप' आत्मा की तथा 'शिखा' अनवरत साधना में तल्लीन निष्ठा की प्रतीक है। 'दीपशिखा' में कुल 51 गीत हैं। वस्तुतः 'दीपशिखा' ब्रह्म के प्रति जीव की निरन्तर ज्वलित जाग्रत साधना की प्रतीक है। महादेवीजी की कविता के दो वृहत्त संग्रह अब तक प्रकाशित हैं। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' तथा 'सांध्य गीत' की 185 कविताओं के संग्रह का नाम 'यामा' है तथा दूसरा संग्रह 'दीपशिखा' है। इस प्रकार 'नीहार' में आकर्षण और पीड़ा की अनुभूति, 'रश्मि' में दार्शनिक सिद्धान्तों, 'नीरजा' में विरह-व्यथा, 'सांध्यगीत' में आत्मतोष और 'दीपशिखा' में अनवरत साधना का प्रतिपादन हुआ है।

महादेवी वर्मा कवयित्री होने के साथ-साथ एक सशक्त गद्य लेखिका भी थीं। उनका गद्य साहित्य काफ़ी प्रखर एवं अनुभूतिप्रवण था। जितना अधिकार उनका काव्य पर था, उससे कम गद्य पर नहीं था। गद्य कृतियों में 'अतीत के चलचित्र', 'श्रृंखला की कड़ियाँ', 'स्मृति की रेखाएँ', 'मेरा परिवार' तथा 'पथ के साथी' आदि प्रमुख हैं। उनके गद्य साहित्य की तीन कोटियाँ हैं। पहले में उनकी विवेचना शक्ति का परिचय मिलता है, जो उनकी कविताओं की भूमिका और स्फुट निबन्धों के रूप में है। दूसरे में उनके संस्मरण हैं और तीसरे में 'चाँद' की उनकी नारी विषयक सम्पादकीय टिप्पणियाँ हैं जिन्हें एकत्रित करके 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नाम दिया गया है। काव्यकार और गद्यकार के रूप में महादेवी का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न है। 'कवि महादेवी' और 'गद्यकार महादेवी' दो व्यक्तित्व हैं, एक नहीं। उनका काव्य पूर्णतः आत्मकेन्द्रिक रहा, जिसे आलोचकों ने भिन्न-भिन्न नाम दिया। किसी ने 'दुःखवाद' कहा तो किसी ने 'रहस्यवाद' और किसी ने 'रुदनवाद' की संज्ञा दी। इसके ठीक विपरीत महादेवी का गद्य समाज केन्द्रिक रहा, जिसमें जनजीवन की पीड़ा को स्वर मिला है और दुःख-दैन्य के प्रति आत्मीयता के भाव गहरे हुए हैं। साथ ही समाज में स्वार्थों एवं अभिशापों का ज़ोरदार प्रतिकार भी किया गया है। काव्य-कृतियों वाली उनकी वैयक्तिक पीड़ा गद्य कृतियों में आकर विस्तार पाती है और वह जन-जन की पीड़ा बन जाती है। उसका मूल उत्स अपनी पीड़ा में नहीं, समाज की पीड़ा में है।

'अतीत के चलचित्र' एवं 'स्मृति की रेखाएँ' में महादेवी के संस्मरणों एवं रेखाचित्रों को देखने से पता चलता है कि उसमें वर्णित पात्र ऐतिहासिक पात्र न होकर भारतीय जनजीवन के कुरूप चिह्न हैं, जिनमें से कुछ अशिक्षा और शोषण से दीन-हीन और सरल बन गए हैं तथा कुछ महादेवी की करुणा और ममता की सहानुभूति से निर्मित। वस्तुतः 'गीतिकाव्य' में व्यक्तिप्रधान महादेवी की भावना रेखाचित्रों में आकर समाजप्रधान बन गई है। रेखाचित्रों में उनकी अनुभूति मात्र प्रणयिनी की अनुभूति नहीं है, उसमें माँ की ममता है, बहन का प्रेम है और है नारी की कोमल काया के भीतर हृदय की अनुभूति की कोमल अभिव्यक्ति। जन-जीवन में व्याप्त दुख, दैन्य, अशिक्षा, उत्पीड़न, अभाव आदि के प्रति विराट सहानुभूतिपूर्ण करुणा और ममता के साथ-साथ कहीं-कहीं विद्रोह भी है, जो करुणा और ममता से ही अभिभूत है। उनके रेखाचित्र जन-जीवन के प्रामाणिक दस्तावेज़ हैं।

यद्यपि 'स्मृति की रेखाएँ' एवं 'अतीत के चलचित्र' में महादेवी के जीवन-संस्मरण सन्निहित हैं, फिर भी उनमें रेखाचित्रों की संख्या अधिक है। 'स्मृति की रेखाएँ' में पहला रेखाचित्र देहात की एक वृद्ध महिला का है, जिसका नाम भक्तिन है। वह अज्ञान और अशिक्षा के कारण अनेक दुर्गुणों के साथ-साथ गुण भी रखती है, जो उसके आकर्षक व्यक्तित्व का परिचय कराते हैं। दूसरा रेखाचित्र एक चीनी फेरी वाले का है, जो अपना देश छोड़कर अपनी खोई हुई बहन की तलाश में फेरी लगाता फिरता है। इसके अतिरिक्त इस संग्रह में गाँव की ग़रीबी, श्रमपूर्ण पहाड़ी जीवन की अभावग्रस्तता, धोबियों के पारिवारिक जीवन की झाँकी आदि महत्वपूर्ण रेखाचित्र हैं। 'अतीत के चलचित्र' के पहले रेखाचित्र में श्रमजीवी ग्रामीण नौकर रामा का ईमानदार चरित्र उभरकर सामने आया है। दूसरे रेखाचित्र में बाल विधवा का चित्र है, जो परिवार के अत्याचार और उपेक्षा भरे वातावरण में अभिशापपूर्ण जीवन व्यतीत करती है। उसमें उसकी मूकवेदना मूर्तिमान हो उठी है। तीसरे रेखाचित्र में विमाता के दुर्व्यवहार से पीड़ित निरीह बालिका की कहानी है। चौथे में सफ़ाईकर्मियों के पारिवारिक चित्रण के साथ-साथ भारतीय नारी के रूप में उपेक्षित 'सबिया' की कर्मठता तथा उत्सर्ग भावना अंकित है। इसके अतिरिक्त सब्ज़ी बेचने वाले नेत्रहीन अलोपी, बदलू कुम्हार, पहाड़ी महिला लक्ष्मी आदि के रेखाचित्र जनजीवन के विविध रूप ही हैं। उनके रेखाचित्रों में विद्रोह की वाणी है और सामाजिक चेतना की धार भी। इन कृतियों में महादेवीजी ने कुछ उपेक्षित प्राणियों के चित्र अपनी करुणा से रंजित कर इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं कि हम उनके साथ आत्मीयता का अनुभव करने लगते हैं। पाठक के लिए वे प्रेरणा के स्रोत हैं, जिसमें अपेक्षित मानवीय गुणों के विकास की सम्भावनाएँ बनती नज़र आती है।

इस प्रकार महादेवी के साहित्य संसार में उनका दोहरा व्यक्तित्व दिखाई देता है, किन्तु उनके साहित्यकार का परिचय हमें कवि रूप में ही अधिक मिलता है, क्योंकि गद्य-कृतियों में भी उनका कवि हृदय हर जगह हावी रहा है। काव्य में उनकी बिरहाकुल आत्मा का निवास है तो गद्य में समाज सापेक्ष विद्रोही आत्मा का। काव्य हो या गद्य, हर जगह उनकी करुणा और वेदना को विस्तार मिला है। दोनों ही साहित्य रूपों में वे पिघलती नज़र आती हैं। काव्य में निज मन के विरह ताप से पिघलती हैं तो गद्य में जनमन के ताप से। करुणा और वेदना उनके निज मन की है और जन-मन की भी। वे विरह और पीड़ा में ही जीना चाहती हैं, इसलिए 'मिलन के नाम' से वे सदा कतराती रहीं। काव्य में महादेवी पीड़ा का संसार रचती दीख पड़ती हैं। इसलिए गद्य कृतियों में जन-मन की पीड़ा के प्रति वे संवेदनशील नज़र आती हैं। उनकी साहित्य-साधना को पीड़ा से ही प्रेरणा और पोषण प्राप्त होता है। इसलिए उनकी कुछ काव्य पंक्तियाँ साहित्य जगत के लिए किंवदंतियाँ बन गई हैं। जैसे- 'तुमको पीड़ा में ढूँढा, तुममें ढूँढूँगी पीड़ा', 'मिलन का मत नाम लो', 'मैं विरह में चिर हूं', 'मैं नीर भरी दुःख की बदली' इत्यादि। वस्तुतः महादेवी में समर्पण का भाव तो है ही, त्याग और तपस्या की दृढ़ प्रतिबद्धता भी है। इसलिए वे मरने-मिटने के अधिकार को खोना नहीं चाहतीं -

'अरे रहने दो हे देव!
यह मेरा मिटने का अधिकार।' ❑



अज्ञेय के जन्मदिवस पर विशेष

अज्ञेय के न बोलने के क़िस्से तो बहुत सुने थे, साक्षात् तब देखा जब शिक्षायतन कॉलेज में उनका सम्मान था। विष्णुकान्त शास्त्री भी थे। अज्ञेय से जब बोलने को कहा गया तो बोले कि मैंने आयोजकों से कहा था कि मैं आऊँगा लेकिन बोलूँगा नहीं। इन्होंने मुझसे वादा किया था कि बुलवाएँगे नहीं।

अपनेपन की आँच



राजेन्द्र उपाध्याय
ई-मेल : rajendra.upadhyaya58@gmail.com

अज्ञेय के अपनेपन की आँच आज भी अपने आस-पास महसूस करता हूँ जबकि उनको गए 37 बरस होने को आए हैं। उन्हें आस-पास अब भी पाता हूँ। उनके कैंवेटर्स ईस्ट वाले घर में भी मैं कई बार गया। कुछ देर इंतज़ार करने के बाद वे आते। वे जब नहीं आते तब भी उनके ड्राइंग रूम की हर चीज़ बोलती थी कि वे हैं यहीं कहीं, और आ रहे हैं। उनके बग़ैर भी हर चीज़ में उनकी उपस्थिति रहती थी। वे नहा-धोकर सज-सँवरकर ही बाहर निकलते थे। उनसे पहली मुलाक़ात कोलकाता के कलामन्दिर में हुई थी। उनको 14वाँ ज्ञानपीठ पुरस्कार कोलकाता में 28 दिसम्बर 1979 को नृत्यांगना रुक्मिणी देवी अरूंडेल ने दिया था। उदयशंकर के नर्तक बेटे (अब स्वर्गीय) ने 'असाध्य वीणा' की अविस्मरणीय नृत्य प्रस्तुति दी थी। मैं तब वहाँ एम.ए. हिन्दी का छात्र था। प्रभाकर माचवे वहाँ भारतीय भाषा परिषद के निदेशक होकर आए थे। अज्ञेय ने उस पुरस्कार समारोह में कहा भी था कि मेरे अधिकांश मित्र जो दिल्ली में रहते हैं, नहीं आ पाए। उनकी बधाई भी मेरे काम की होती... पर...।

मेरे एम.ए. हिन्दी के पाठ्यक्रम में 'शेखर' था। 'रोज़' कहानी थी और 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि' माला में विद्यानिवास मिश्र द्वारा सम्पादित (1963) पुस्तक थी। पाठ्यक्रम में शामिल कवि सभी दिवंगत होते थे या पहुँच से बाहर होते थे जैसे हरिऔध, रसखान, गुलेरी, कबीर, मोहन राकेश। फिर इतनी जल्दी अज्ञेय मिल

जाएँगे, सोचा न था। शाम रात में बदल चुकी थी। इसी पुरस्कार समारोह में अग्रिम पंक्ति में बैठे अज्ञेय के पास जाकर देखा, वह प्रशंसकों से घिरे थे। आकाशवाणी के केन्द्र निदेशक इंटरव्यु के लिए ज़ोर दे रहे थे। ऑटोग्राफ़ बुक पकड़ाई। "अब छोड़िए, अब छोड़िए।" शायद थक गए होंगे। फिर भी क़लम पकड़ा ही दी। छोटा-सा शब्द लिखा 'अज्ञेय', हड़बड़ाहट में मेरी क़लम, क़लम के धनी के पास ही रह गई। पता नहीं उसका उन्होंने क्या किया। इस पुरस्कार समारोह में लोठार लुत्से सहित उनके कई अन्य दोस्त भी आए थे। अज्ञेय के न बोलने के क़िस्से तो बहुत सुने थे, साक्षात् तब देखा जब शिक्षायतन कॉलेज में उनका सम्मान था। विष्णुकान्त शास्त्री भी थे। अज्ञेय से जब बोलने को कहा गया तो बोले कि मैंने आयोजकों से कहा था कि मैं आऊँगा लेकिन बोलूँगा नहीं। इन्होंने मुझसे वादा किया था कि बुलवाएँगे नहीं। इसलिए मैं इनका दिया वादा तोड़ूँगा नहीं और ये भी मुझ पर दबाव नहीं डालेंगे। और यही हुआ अज्ञेय नहीं बोले। अज्ञेय वहाँ रामकृष्ण मठ के गेस्ट हाउस में ठहरे थे।

'द स्टैट्समैन' ने उनको ज्ञानपीठ पुरस्कार मिलने पर लिखा- 'जर्नलिस्ट गेट्स ज्ञानपीठ दिस इयर'। ज्ञानपीठ पुरस्कार समारोह में दिया गया उनका भाषण उत्कृष्ट गद्य का नमूना थ। कई दिनों तक मैंने उसे सम्भाले रखा था। वह पूरा भाषण फिर कहीं मिला नहीं। सुदर्शन मानस मुकुल दास अज्ञेय को 'शिल्पी' कहते थे। मैंने पहली बार तब किसी लेखक के लिए 'शिल्पी' शब्द सुना था। शिल्पी मैं वास्तुशिल्पी या शिल्पकार (कुम्हार) को ही मानता था। बाद में पता चला, अज्ञेय वास्तव में शिल्पकार थे। वे चमड़े का काम करना भी जानते थे। उन्होंने जैनेन्द्र का 'प्लास्टर ऑफ़ पेरिस' का 'बस्ट' (बुत) बनाया था। वे सीना, पिरोना, काढ़ना भी जानते थे।

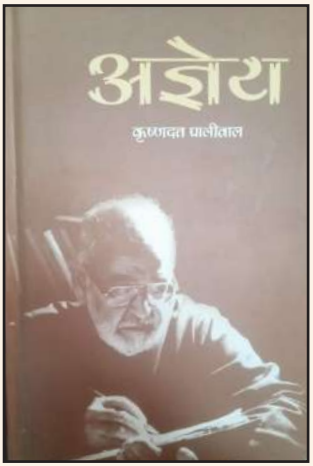
'तारसप्तक' मैंने पढ़ा नहीं था। पाठ्यक्रम की किताबें ही पढ़ता था। 'शेखर' भाग दो ही कोर्स में था। नहीं पढ़ा था। कविताएँ पढ़ी थीं। भारतीय भाषा परिषद में माचवेजी के साथ चार सौ रुपये में लग लिया था। यूनिवर्सिटी में तीन बजे तक क्लास करता, फिर ट्रॉम में बैठकर भारतीय भाषा परिषद में। वहाँ मंगलवार को कवि गोष्ठी होती। संचालन मैं ही करता था। एक दिन वहाँ अतिथि विनोददास आए। तब तक उनको भारतीय ज्ञानपीठ का 'युवा कविता पुरस्कार' मिला था। उनको बुलाया। उनके साथ कोलकाता घूमा। चर्चा हुई तो उन्होंने बताया कि अज्ञेय ने 'वत्सल निधि' की स्थापना आप जैसे युवकों के लिए ही की है।

मैं अपने भारतीय भाषा परिषद और एम.ए. हिन्दी की कक्षाओं में व्यस्त था कि एक दिन अचानक मेरे 33, डॉ. शरत बनर्जी रोड, कलकत्ता-700029 (तब की लघु पत्रिकाओं में मेरी कविता के साथ यही पता छपता था-) पते पर सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन का नहीं अज्ञेय का एक लिफ़ाफ़ा प्राप्त हुआ जिसमें वत्सल निधि के क्रियाकलापों के बाद वृंदावन लेखक शिविर में आने का आमंत्रण था। कई दिनों तक 31 अक्तूबर 1982 की सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन की वह चिट्ठी झोले में डाले घूमता रहा। माचवेजी को दिखाया- यूनिवर्सिटी की कक्षाओं में लड़कियों पर रौब मारा कि अज्ञेय ने बुलाया है।

वृंदावन कैसे जाना है, कब पहुँचना है, तब मुझे पता नहीं था। दिल्ली भी मैं बड़ा होने

के बाद नहीं आया था। पिताजी किसी काम से दिल्ली गए तो मैंने उनसे अज्ञेय से बात करने को कहा। मेरे पास उनका टेलिफ़ोन नम्बर नहीं था। डायरेक्टरी में भी नहीं। तब पिताजी ने अपने मित्र वेदप्रताप वैदिक (जो हिन्दी में राजनैतिक शास्त्र की थीसिस लिखकर चर्चित हो चुके थे) से कहा। उन्होंने अज्ञेय से बात की और अज्ञेय ने कहा कि कोलकाता से तो सीधे वृंदावन-मथुरा पहुँचने में ही सुविधा रहेगी। फिर भी मैं 25 दिसम्बर को दिल्ली आ गया और मित्र के स्कूटर से कैवेंटर्स ईस्ट पहुँचा। सुबह-सुबह अज्ञेय ने ही आकर दरवाज़ा खोला– धवल दाढ़ी में, गाउन में उनका वह भव्यरूप भूलता नहीं है। नाश्ते की टेबल पर ले गए, इलाजी से परिचय कराया जो तब पैंट पहने थीं। इलाजी ने प्रेम से नाश्ता कराया, कॉफ़ी पिलाई। अज्ञेय अपनी ब्रेड खुद ही काटकर टोस्टर में डालते थे। बाद में मुझे बाथरूम आदि दिखाकर लॉन में धूप में छोड़ दिया गया। "ज़रा हम लोग भी तैयार हो लेते हैं," अज्ञेय ने कहा। लॉन में बैठे-बैठे बोर हो रहा था कि कथाकार गोविंद मिश्र आ गए। वे भी चलेंगे, पता लगा। तृतीय वत्सल निधि लेखक शिविर में 'साहित्य और सामाजिक परिवर्तन' विषय था। दोपहर तक रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि कई लेखक आ गए। एक मैटाडोर कम पड़ गई। दूसरी फ़ोन करके मँगाई गई। अज्ञेय ख़ुद हर चीज़ ध्यान से रखवा रहे थे। आने-जाने के लिए दूसरे दर्जे के मार्गव्यय की व्यवस्था थी।

वृंदावन में ठंड बहुत थी और मैं तब उसके लिए तैयार होकर नहीं आया था। अतः ठिठुरता रहा था। एक ईंटों वाली बन रही इमारत में हमें ठहराया गया था। कंबल आदि तो थे फिर भी ठंड थी। ब्रजेन्द्र त्रिपाठी, अजय पंडित आदि तब विद्यानिवासजी के साथ थे- ये हमारे कमरे में सुबह-सुबह कुल्हड़ में चाय के बाद गरम पानी की बाल्टी पहुँचाते थे। वृंदावन में एक सत्र काव्यपाठ का भी था जिसकी अध्यक्षता राजकुमार कुंभज ने की और संचालन मैंने किया था। उस कवि सम्मेलन में उस समय के सभी शीर्षस्थ कवियों ने काव्यपाठ किया था। इसमें शिवमंगल सिंह 'सुमन', नरेश मेहता और बसंत बापट (मराठी के शीर्षस्थ कवि) प्रमुख थे। इसमें



लेखक : कृष्णदत्त पालीवाल
पृष्ठ : 370; **मूल्य :** 280 रुपये

प्रकाशन विभाग द्वारा 'अज्ञेय' पुस्तक प्रकाशित की गई है। इस पुस्तक में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व पर गहन दृष्टि डाली गई है। पुस्तकें ख़रीदने और सूची देखने के लिए प्रकाशन विभाग की वेबसाइट publicationsdivision.nic.in देखें। वेबसाइट पर जाने के लिए QR कोड स्कैन करें।

रमेशचन्द्र शाह, ज्योत्सना मिलन, मदन सोनी, आचार्यजी, ध्रुव शुक्ल, रामस्वरूप चतुर्वेदी, कृष्णगोपाल चतुर्वेदी, अजीत कुमार, स्नेहमयी चौधरी, रमेश ऋषिकल्प, सुमनजी, नरेश मेहता, वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य भी थे। चनुकांत वांदिवडेकर, पुणे के फ़िल्म आलोचक सतीश बहादुर थे। श्रीकांत जोशी भी थे। अज्ञेय के बाद जिन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था वे वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य भी आए थे। दो-तीन ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त कवि वहाँ थे। इसी शिविर में एकाध कवि ने 'धूमिल मार्का' कविताएँ भी पढ़ी थीं। सबसे आख़िर में अज्ञेय ने अपनी चुनी हुई कविताएँ खड़े होकर सुनाई थी।

इसी सत्र में सुमनजी ने समाँ बाँधा। नरेश मेहता छा गए। मैंने भी कविता पढ़ी थी। कुछ सवाल-जवाब हुए। युवा कवियों के सामने क्या दिक़्क़त आ रही है, आदि। सत्र का संचालन मदन सोनी ने किया था। मैंने, कहा कि, "'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' जैसी पत्रिकाएँ हम लोगों को स्थान नहीं देती हैं तो निराशा होती है, और तो और, जिस समाज में हम रहते हैं, उसमें इन पत्रिकाओं में छपने वालों को ही कवि माना जाता है, बाक़ी को नहीं। ऐसे में हम क्या करें?" अज्ञेय ने इस बात पर कहा कि आप लोग जिन पत्रिकाओं में न छपने पर अफ़सोस करते हैं- आपको मालूम होना चाहिए कि इनमें से किसी पत्रिका में वर्षों से मेरी कोई रचना नहीं छपी है, न छपेगी। इन पत्रिकाओं को आप अपना पैमाना मत मानिए और लिखते रहिए। आज की कविता पर उन्होंने श्रोताओं के प्रश्नों के उत्तर भी दिए। फिर कहा कि जहाँ तक इन कवियों की कविता का सम्बन्ध है, मैं इनसे अलग बात करूँगा।

रात को खाने के बाद उन्होंने हम सबको एक बड़े से कमरे में बुलाया और उस शाम जितना मुखर मैंने उनको कभी नहीं देखा। अज्ञेय इतने मुखर भी हो सकते हैं। 'धूमिल मार्का' कविता की भी उन्होंने आलोचना की जबकि वह श्रोताओं के लिए असरकारक थी। उन्होंने मुझसे कहा कि बताइए अगर आपकी कविता को तोड़कर नहीं, सीधी पंक्ति में लिख दें तो क्या कविता रहेगी? या नहीं? कैसे कविताएँ बताएँगे। फिर पूछा कि आप कैसे बताएँगे कि कविता यहाँ ख़त्म हो रही है? या हो गई है? उर्दू के शायर तो बताते थे कि अंतिम है, अंतिम मिसरा है या गीतकार भी कहता था कि अंतिम पंक्ति है। आख़िरी दोहा है, शेर है, आदि। ये सब सवाल दिमाग़ चकरा देने वाले थे। तब इनके पीछे की अर्थ व्यंजना समझ में नहीं आती थी। अब कुछ-कुछ समझ में आता है। 'धूमिल मार्का' कविता पर उन्होंने कहा था कि थोड़ी देर के लिए चमत्कार पैदा करना कवि का उद्देश्य नहीं है। अज्ञेय हम युवा कवियों से संवाद के इच्छुक थे। एक दिन रमेश ऋषिकल्प, मदन, ध्रुव, कुंभज, रमेश दत्त दुबे ने उन्हें घेर ही लिया। वे भी देर तक हम लोगों के बीच खड़े बतियाते रहे। मैंने संकोच तोड़कर पूछ ही लिया, "अज्ञेयजी। आप इतना कम क्यों बोलते हैं?" बोले, "कुछ तो जेल में रहने के कारण मौन व्रत की आदत पड़ गई है। अब तो इतना बोल भी लेता हूँ। पहले तो ये हाल था कि ज़रा-सा बोलता था तो जबड़ों में दर्द होने लगता था। फिर अब यह संकल्प लिया है कि व्यर्थ का बोलकर ऊर्जा का अपव्यय न करूँ। ऊर्जा को बचाकर रखना चाहिए। ❑



मनोहर श्याम जोशी की पुण्यतिथि 30 मार्च पर विशेष

बेबी उर्फ़ मैत्रेयी शास्त्री के बहाने कुछ बातें...

पूरी कथा में हमें बेबी के कई-कई रूप दिखाई पड़ते हैं। हर रूप उतना ही ख़ास और तेजोमय। चन्द्रमा के अलग-अलग आकारों के साथ जैसे प्रतिस्पर्धा करता हुआ, जैसे कोई समायोजन बिठाता हुआ। उपन्यास की शुरुआत में जो बेबी है, उसकी अठखेलियाँ हैं, उपन्यास के उत्तरार्ध में वह मैत्रेयी मिश्र है। एक गृहस्थिन की भरी-पूरी सम्पदा, गरिमा और ठसक के साथ। उम्र अपना काम करती है। वरीयताएँ बदलती हैं।



अर्पण कुमार
ई-मेल : kumararpan1977@gmail.com

1982 में एक उपन्यास आता है 'कसप'। मनोहर श्याम जोशी विरचित। देखते-देखते उसकी धूम मच जाती है। उसके ठीक पूर्व 'कुरु-कुरु स्वाहा'... जैसा उनका असाधारण, बेहद प्रयोगशील और जटिल फ़ॉर्म वाला उपन्यास 1980 में प्रकाशित हुआ। इन दोनों उपन्यासों को एक लेखक के साथ जब हम जोड़कर रखते हैं, तब सहसा किसी शब्दशिल्पी की सत्ता पर हमें नाज़ हो उठता है। इतनी सारी पेचीदगियों को सम्भालते हुए चलना सचमुच कितना मुश्किल भरा रहा होगा! जिन जगहों और कार्यों से लेखक का वास्ता रहता है, उन अनुभवों से चिर-परिचित होते हुए भी उन्हें गल्प में दर्ज करते जाना आसान नहीं होता। यह बात उन कृतियों पर समान रूप से (कई बार कुछ विशेष ढंग से भी) लागू है, जो हमें आसान नज़र आती है। हर कृति के आरम्भ और पूरा होने की अपनी कथा होती है, जिसमें पाठक का कौतुकभरा प्रवेश होता है। पाठक टेक्स्ट और उसके रचयिता दोनों को पढ़ता है। लेखक कोई हो और कहीं का हो, पहले तो वह एक इंसान ही होता है। उसके साथ भी वे सभी दुनियावी व्यवहार घटित होते हैं, जिनसे वह कभी ख़ुश तो कभी दुःखी होता है। मनोहर श्याम जोशी

'कसप' की रचना के पीछे उस तत्काल को पकड़ने की कोशिश करते हुए इसके बारे में स्वयं बताते हैं, "'कसप' मैंने घोर निराशा, गहन उदासी और मोहभंग की मनःस्थिति में लिखा।" (जानकीपुल)

आगे-पीछे लिखे गए अपने इन दो उपन्यासों ('कुरु-कुरु स्वाहा' और 'कसप') के हासिल पर उपन्यासकार बताता है, "जिस तरह मैंने 'कुरु-कुरु स्वाहा' लिखकर मनोहर श्याम जोशी से अपना हिसाब चुकता कर दिया था, वैसे ही 'कसप' लिखकर अपने ब्राह्मण पूर्वजों से कर दिया है।" (जानकीपुल)

अपनी जड़ों और अपने पूर्ववर्तियों से उनका जुड़ाव काफ़ी गहरा है। बोलियाँ, जातियाँ, रीति-रिवाज, अंधविश्वास, आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता इन सबका अर्क़ हमें उनके लेखन में मिलता है। समाज से समायोजन के हर व्यक्ति के अपने तरीक़े होते हैं। उसके भीतर विकसित होते उसके अपने आग्रह और आशंकाएँ होती हैं। कई बार वे अंशों में लेखक के गढ़े पात्रों में दिखाई पड़ती हैं। जोशी के यहाँ जो पात्र विद्रोही हैं, वे कुछ अटपटे ढंग से पारम्परिक भी हैं। अजीबोग़रीब स्थितियों का चक्रव्यूह मनोहर श्याम जोशी का लेखक रचता है। उनके पात्र उसमें से निकल पाते हैं तो कई उसके भीतर उलझकर रह जाते हैं। जोशी स्वयं को पालतू बोहेमियन (इसी नाम से उनपर केन्द्रित प्रभात रंजन की पुस्तक भी है।) कहते रहे हैं, जिसके अपने गहरे निहितार्थ हैं।

यथार्थजन्य परिवेश के बीच से उठाए गए चरित्र किसी गल्प में आकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बना लेते हैं। उन्हें रचते हुए लेखक का यथास्थितिवाद से विद्रोह और उससे असंतोष उसमें आकर पैठ जाता है। लेखक की अपनी कल्पनाशील दृष्टि उन चरित्रों को सजाती-सँवारती है। गो, कई बार लेखक को चौंकाते हुए अपने रचाव को लेकर वे पात्र उसे कुछ-कुछ निर्देशित भी करने लगते हैं। भदेसता में चमकीलापन तभी आता है। लेखक भी अपने पात्रों के साथ गलबहियाँ करता हुआ कई साहसिक और अपारम्परिक प्रयोगों के अभ्यारण्य में विचरता है। अपनी पुस्तक 'उपन्यास का काव्य-शास्त्र' में बच्चन सिंह लिखते हैं, "वास्तविक जीवन में हमारा परिप्रेक्ष्य अत्यधिक बनावटी और सीमाबद्ध होता है। अपनी कायरता में हम एक घिसी-पिटी ज़िन्दगी को ओढ़ लेते हैं और दूसरों को भी उसी से ढक लेना चाहते हैं। वास्तविक ज़िन्दगी में हमारे लिए कोई बोर होता है और कोई घिसा-पिटा, कोई क्लाउन होता है, कोई निष्प्राण पर उपन्यास में अपनी जटिलता के कारण वे दिलचस्प हो जाते हैं। वास्तविक जीवन की सपाटता उनमें नहीं रहती। वे बोर होकर बोरियत को तोड़ते हैं। 'राग दरबारी', 'कसप' और 'एक पति के नोट्स' में ऐसे चरित्रों की कमी नहीं है। वे अपना परिप्रेक्ष्य बनाते हैं और पाठकों के लिए ज़रूरी हो जाता है कि वे अंतर्निहित अर्थ को समझें, अंग्रेज़ी की शब्दावली में 'बिटविन दी लाइन' पढ़ें।

ऐसा नहीं कि हम सब अपने-अपने परिवेशों में इन जटिलताओं को नहीं समझते, इन्हें नहीं जीते, मगर उन तमाम पेच-ओ-ख़म को कई-कई और चक्कर देते हुए किसी कृति-विशेष में समाहित करना और उन्हें अंत-अंत तक ठीक-ठाक सम्भाल ले जाना

सबके वश की बात नहीं। जोशी के जज़्बे को सलाम। 'कसप' एक ऐसी कृति है जिस पर चर्चा कभी भी की जा सकती है। हर बार कुछ नवीन कोणों के साथ। उसके पात्र कभी पुराने नहीं हो सकते। अपने रचाव में वे इतने सरल और जटिल एक साथ हैं कि उन पर मुकम्मल चर्चा किसी एक बैठक/आलेख में नहीं की जा सकती।

चरित्रों को विकसित करने, दृश्यों को रचने और घटनाओं में कई नाटकीय मोड़ देने में अभ्यस्त मनोहर श्याम जोशी यहाँ भी एक ऐसा ही जीवन्त चरित्र रचते हैं। वह है बेबी। वह हमें झकझोर कर रख देती है। इस उपन्यास में कई घटनाएँ घटती हैं। कई पात्र हैं, मगर, इस आलेख में हमें विशेषकर बेबी की बात करनी है। हम पाते हैं कि उसका अंदाज़ खिलंदड़ा है, मगर उसमें इकहरापन नहीं है। वह जीवन को, उसके उतार-चढ़ाव को अपने तरीके से अपनी साँसों में भरती है मगर, उस पर आगे और चर्चा करने से पूर्व मुए 'मारगाँठ' की कुछ चर्चा तो कर ली जाए, जहाँ से यह कथा आरम्भ होती है और जिस पर आकर विराम भी लेती है। 'मारगाँठ' जिसका शाब्दिक अर्थ है, 'दोहरी गाँठ'। किसी नाड़े-फ़ीते को बाँधते हुए हममें से कइयों से अक्सर ऐसी दोहरी गाँठ लग जाया करती है। बचपन की करतूत, शहतूत की तरह मीठी होती है। वह आगे किशोरावस्था/युवावस्था में भी जारी रहती है। कइयों के मामलों में वह वृद्धावस्था में पुनः-पुनः लौट आती है। यह मारगाँठ कथा की गाँठ भी बाँधती है। शुरुआत में नायक-नायिका को परस्पर मिलाती है और कथा-समाप्ति के वक़्त अरसे बाद मिले इन दोनों के बीच भी तो उपस्थित रहती है।



भारतीय टीवी धारावाहिक के जनक
मनोहर श्याम जोशी
(9 अक्तूबर, 1933 - 30 मार्च, 2006)

'कसप' उपन्यास अपने लेखक की उपस्थिति से कुछ विशेष प्रभावी हो उठता है। बीच-बीच में उसके कमेंट्स पाठकों को पूरी पृष्ठभूमि से अवगत कराते और गुदगुदाते चलते हैं। लोकेल और टाइम दोनों से। ह्यूमर से भरे लेखक के नोट्स पाठकों को हल्का करते चलते हैं, वहीं नीम-दर्शन सी उसकी बातों से उन्हें दिमाग़ी ख़ुराक भी मिलती है। बीच-बीच में अँगोछे से अपनी तो कभी अपने पात्रों की देह-मन को जैसे पोंछता हुआ-सा अगर वह उपस्थित न होता तो शायद यह कृति उस तरह से अपनी जगह नहीं बना पाती, जैसी आज इसकी है। प्रेम को लेकर जो व्याख्याएँ यहाँ जिस चुटीली भाषा में और जिज्ञासा भरे मन से हुई हैं, उसमें चुहल-गाम्भीर्य के अनुपात कुछ ऐसे हैं कि इतने वर्षों बाद भी इस कृति के भीतर जैसे कोई सदाबहार ताज़गी बनी हुई है, जो ऋतुओं से अप्रभावित है। वैसे ही जैसे 'राँदेवू' (पृ. 10, 'कसप', तेरहवाँ पेपरबैक संस्करण, 2021) (नैनीताल के उस बँगले का नाम, जहाँ एक शादी-समारोह में आए हुए नायक-नायिका की एक-दूसरे से पहली

भेंट होती है) पर बेबी के सौन्दर्य में डी.डी. (देवीदत्त तिवारी) को एक विशेष लावण्य दिखता है और वह उसे जीन-सिम्मंस लगती है।

बेबी जैसे करिश्माई किरदार पर कुछ लिखते हुए जाने कितने कोण सामने आने लगते हैं! पाँच भाइयों के बीच पली-बढ़ी इकलौती बहन बेबी के भीतर की जमी जड़ें भी तो कोई कम गहरी नहीं! वह एक बहुस्तरीय चरित्र है। अपने जिस परिवार-परिवेश के बीच सुरक्षित और लगभग भारमुक्त रहती हुई वह अपने अल्हड़-खिलंदड़ेपन को सींचती रही है, उनके स्नेह-पुँज से ऊर्जा लेती रही है, ज़रूरत पड़ने पर उन सभी से वह लोहा लेने को भी तत्पर हो जाती है। डी.डी. के साथ घटित हुआ उसका प्रेम-सम्बन्ध, इस कथा के रचाव का सबब तो बनता है, मगर जिस भावुकता और दृढ़ता के साथ बेबी अपने प्रेम के प्रति आग्रहशील और आस्थावान रहती है, उसके स्वभाव के वे सभी फब-ढब उन्हीं पारम्परिक स्रोतों से आए हुए हैं, जहाँ एक लड़की, परिवार ही नहीं, पूरे कुनबे की इज़्ज़त होती है और जहाँ चौकसी भरी कई-कई दृष्टियाँ एक साथ उस पर तैनात होती हैं। जहाँ पूरा शहर पूरे शहर को देखता है, जहाँ निजता कभी कोई मुद्दा ही नहीं ठहरी। उस पारम्परिक समाज में भी प्रेम होते रहे हैं। सफल-असफल दोनों। प्रेम को लेकर हिंसा और हत्याएँ होती रही हैं। 'कसप' की बात करें तो बेबी का भाई, उसके प्रेमी डी.डी. को बुरी तरह पीटता है, मगर कभी प्रेम में स्वयं असफल रहे बेबी के पिता, उसके प्रेम को लेकर कमोबेश आर्द्रता का भाव भी रखते हैं। जिस काल (सन् 1954) में यह कथा आरम्भ होती है (जब देश में प्रथम पंचवर्षीय योजना चल रही थी), काल-सापेक्ष बात करें तो बेबी ऐसी कोई अल्पवयस्का नहीं मानी जाएगी। वह सत्रहवें और इंटर के प्रथम वर्ष में है। मगर, बिना दाँतों की बछड़ी की तरह वह कुछ ऐसी मनमौजी है, जो खेल-खेल में अपना दिल तो हारती ही है, अपने प्रेम-पत्रों को अपने पिता से पढ़वाती भी है। भला ऐसी कितनी लड़कियाँ होंगी जो अपने लिए आए प्रेम-पत्रों का वाचन अपने पिता से कराती हों! और शास्त्रीजी, अपने प्रेम में कभी विफल रहे शास्त्रीजी उस युवक को अपनी पुत्री के लिए यथोचित वर न मानते हुए भी उसकी भाषा से प्रभावित होते हैं। उसमें जहाँ-तहाँ कुछ सुधार करने के गुरु-दायित्व की इच्छा भी पाल लेते हैं। अपने चार पुत्रों में से किसी की भी भाषा और साहित्य के प्रति रुचि न होने का अफ़सोस संस्कृत के प्रोफ़ेसर का दिल कभी-कभी दरका देता है। ऐसे मौक़ों पर ख़ासकर। अस्तु, अपनी पुत्री की अभिलाषा से अधिक महत्व वे उसकी आर्थिक सुरक्षा को देते हैं। पिता की पुत्री पर लौटते हैं, जो फ़िलवक़्त हमारा अभीष्ट है। बेबी, हाँ, बेबी ही तो। बेबी, जो कुछ भी कर सकती है। वह अपनी शादी के लिए प्रस्तावित वरों का मज़ाक उड़ा सकती है। किसी खाँचाबद्धता को अस्वीकारते हुए हर तरह का खेल खेलती है। शारीरिक और मानसिक दोनों। क्रिकेट खेलते हुए कभी अपने बाएँ हाथ की छोटी अँगुली तुड़वा ली थी तो प्रेम करते हुए वह शरीर के बाएँ हिस्से में धड़कता-तड़पता अपना नन्हा दिल भी अंततः तुड़वा लेती है। हर तरह के निषेध और निर्देश को उसकी अल्हड़ता उपहास

में तब्दील कर दिया करती थी मगर, यह भी सच है कि प्रेमरत बेबी, अपनी अल्पज्ञता को लेकर कोई कुंठा नहीं पालती थी, मगर वह जैसे ही उस प्रेम से बाहर आती है, और वह भी बुरी तरह टूटकर, तो जो पहला काम करती है, अपनी सहज-व्यावहारिक मेधा से, वह यह कि अपने-आपको शैक्षणिक स्तर पर मज़बूत करती चली जाती है। वह अपने पिता शास्त्रीजी को अपना गुरु बनाती है और डी.डी. से यूँ अलग होकर वह नए कलेवर के साथ हमारे सामने आती है। विजयमोहन सिंह लिखते हैं, "'सफलता' अगर डी.डी. के लिए 'रिव्हेंज' है तो 'शिक्षा' बेबी के लिए।' ('कथा समय', विजयमोहन सिंह)

बेबी के भीतर आते गए बदलावों का वर्णन उपन्यासकार इन शब्दों में करता है, "वह जो एक अल्हड़-सी, अनपढ़-सी, ठेठ अल्मोड़िया-सी बेबी थी, बहुत तेज़ी से एक परिष्कृत युवती मैत्रेयी में बदल गई, जिसके रहन-सहन में, बोलने-चालने में, पहनने-ओढ़ने और सजने-सँवरने में आभिजात्य के दर्शन हुए। यह नहीं कि वह कुछ अलग-ऊँची-सी, रूखी-सी बन गई। नितांत सरस बनी रही वह, हँसी-मज़ाक में सबसे आगे। इतना ही कि उस हास-परिहास में भी अब एक प्रकार की प्रौढ़ता आ गई। हर मंच पर उसका अनौपचारिक आभिजात्य, उसका वाग्वैदग्ध्य और जीन सिम्मंस-रूप एक दुनिर्वार आकर्षण पैदा करने लगा उसके प्रति।" (पृ. 265, 'कसप')

गुलनार के सम्पर्क में है मगर क्या वह बेबी को भूल पाता है! लेखक, बेबी के बरअक्स गुलनार को खड़ा तो नहीं करता! जो भी हो, जब बेबी अपने पर आती है तो क्या गुलनार और क्या अमरीका – सबको धो डालती है। भाँति-भाँति के चरित्रों से यह उपन्यास भरा पड़ा है मगर इन सब पर बेबी ही तो भारी ठहरी! अगर 'कसप' की कहानी को उदासी और मिठास के घोल से बनी बताई जाती है, तो इसमें उस प्रेम-कहानी की संवाहिका बेबी ही तो रही, बल! उसके सुख-दुख दोनों से मचलती-मितलाती।

बेबी, डी.डी. से बिना शर्त प्यार करती है। बराबरी के स्तर पर। वह उसके पढ़े-लिखे होने का सम्मान करती है और उसकी विचित्र-विचित्र आदतों पर जीभर हँसती है। ऐसे कई सचित्र दृश्यों से यह कथा हरी-भरी है। वह उसके साथ दोस्ती और छेड़छाड़ के तमाम रंगों से स्वयं सराबोर होती है और उसे भी करती है। वह उसकी होशियारी और मूर्खता दोनों से प्यार करती है। वह उसके साथ अभेद हो उठती है। मन-ही-मन उस पर अपना सर्वस्व लुटा देती है। उसकी नज़र में उसका प्रेमी सामान्य बल्कि कुछ 'असामान्य क़िस्म का मूर्ख' (पृ. 110, 'कसप') है। बेबी को अपनी यह धारणा तब और पुष्ट होती दिखती है जब डी.डी. दया से विवाह नहीं करने का निर्णय लेता है। उसे तब क्या मालूम था कि स्वयं उसके प्रेम को भी विवाह तक पहुँचाने के अवसर पर डी.डी. कुछ और मोहलत माँग लेगा! और उस मोहलत के चक्कर में बेबी का सारा उत्साह पानी-पानी हो जाएगा और राग-अनुरागों से गुनगुनाते उसके मन को एक तीव्र झटका लगेगा! मगर क्या कीजै कि उस बाले के जीवन में यह सब होना था। हुआ। शायर सलीम कौसर ऐसे ही मौक़ों के लिए लिख गए हैं शायद ...

'मोहलत न मिली ख़्वाब की ताबीर उठाते
हम मारे गए टूटे हुए तीर उठाते।'

इसका संकेत तो पूर्व में कथाकार ने भी दिया ही था। उपन्यास के आरम्भ का वह अंश देखें, "नायक-नायिका में से कोई भी किसी पिछले प्रेम से आहत नहीं है लेकिन आहत होंगे अब, ऐसी आशा की जा सकती है, क्योंकि एक उम्र होती है आहत होने की और वे उस उम्र में पहुँच चुके हैं। उस उम्र के बाद और उस चोट के बावजूद तमाम और ज़िन्दगी होती है, इसलिए लेखक होते हैं, कहानियाँ होती हैं।" (पृ. 10, 'कसप')

नायिका के लिए प्रेम के मायने क्या हैं, इसे जानने-समझने के लिए उपन्यास के इस अंश को पढ़ते हैं, "बेबी के लिए प्रेम दो अकेलेपनों के एक-दूसरे को सहेजने, सहलाने और असीसने का पीड़ास्पद और पीड़ाजनित क्रम नहीं है। प्रेम उसके लिए दो जनों की स्वास्थ्यप्रद क्रीड़ा है।" (पृ. 111-112)

मगर वह जिस लाटे (डी.डी.) से प्रेम करती है, जिसके साथ घटती उल-जलूल बातों पर गुड़िया और अन्य के साथ मनभर मनों हँसी हँसती है, वह जानती है कि उसका वह लाटा उससे भिन्न राय रखता है। वह प्रेम को इस दृष्टि से नहीं देखता मगर, वह हार नहीं मानती। निराश नहीं होती। वह तो उसके स्वभाव में ही नहीं ठहरा, बल। इसका काट वह कैसे निकालती है, इसे देखें, "अगर डी.डी. आया तो वह कभी गर्वीली अलभ्य साम्राज्ञी बनकर उसी के बनाए सिंहासन पर विराजमान रहेगी और हथेली पर उसका विह्वल 'जिलेंबू' ग्रहण करेगी और कभी उसे धकियाकर और उसके बनाए सिंहासन को लतियाकर दौड़ भागेगी कि मैं कोई देवी, कोई साम्राज्ञी नहीं, कौतुक-कन्या हूँ मात्र, और जो तेरे भेजे में अक़्ल और टाँगों में ताक़त हो तो दौड़कर मुझे पकड़ ले और दे गिरा घास पर। हाँफता हुआ झुक, मुझ हाँफती हुई पर।" (पृ. 112)

बेबी की अँजुली ने बहुतेरे अनुभव बटोरे, मगर उसका बेशक़ीमती अनुभव हाथ आकर भी उसके जीवन का स्थायी हिस्सा नहीं बना। इस नकार से वह ऐसी टूटी कि काफ़ी हद तक बदल गई। डी.डी., बेबी के जीवन में प्रेम की बोहनी है, वहीं बेबी से मिलने से पूर्व डी.डी. प्रेम के तीन छोटे-छोटे प्रसंगों से गुज़र चुका है। 'हलफ़िया बयान' देते हुए उन तीन प्रसंगों की चर्चा हुई है, मगर, उन्हें 'प्रेम ठहराने की ज़िद' (पृष्ठ 10) न करने की अपील भी की गई है। जीवन को, प्रेम को बेबी सहज भाव से लेती है। वह दिल से ज़्यादा और दिमाग़ से कम सोचती है। वह खिलंदड़ है, मगर, खिलंदड़े ढंग से कही उसकी बातों में कोई इकहरापन नहीं है। उपन्यास की शुरुआत में उसका चरित्र भीगे चने के अँकुराने जैसा है। स्निग्ध और भावपूर्ण। शिद्दत से किए गए उस प्रेम में असफल होने पर वही चरित्र चने के उस दाने सदृश दिखता है, जो पानी में रखे जाने के बावजूद अंकुरित होने से इंकार कर देता है। वह इतना कमज़ोर नहीं होती कि कोई उसे मसल दे। वह स्वयं को नए सिरे से तैयार करती है। डी.डी. उससे सगाई कर लेने और दो-तीन वर्षों में अमरीका से आकर शादी कर लेने का प्रस्ताव देता है, मगर वह जैसे इस संकल्पना को ही पूरी तरह त्रुटिपूर्ण मानती है। उस अवसर पर डी.डी. से हुए

संवाद बेबी के बेहद तर्कशील और मज़बूत रूप से हमारा परिचय कराते हैं। वहाँ डी.डी. किसी उद्धव सरीखा बेबस दिखता है तो बेबी में स्वाभिमानी गोपियों का स्वर आ पैठता है।

पूरी कथा में हमें बेबी के कई-कई रूप दिखाई पड़ते हैं। हर रूप उतना ही ख़ास और तेजोमय। चन्द्रमा के अलग-अलग आकारों के साथ जैसे प्रतिस्पर्धा करता हुआ, जैसे कोई समायोजन बिठाता हुआ। उपन्यास की शुरुआत में जो बेबी है, उसकी अठखेलियाँ हैं, उपन्यास के उत्तरार्ध में वह मैत्रेयी मिश्र है। एक गृहस्थिन की भरी-पूरी सम्पदा, गरिमा और ठसक के साथ। उम्र अपना काम करती है। वरीयताएँ बदलती हैं। चिड़िया की बोली किसी और आँगन में गुँजायमान होती है। उसकी चहचहाहट में गांभीर्य आता है, यद्यपि उसके कंठ से मिठास कभी नहीं जाती। जिस बेबी को कुछ भी लिखने में बहुत आलस आता है।" (पृ. 94); वही बेबी बाद में पढ़-लिखकर अपने कच्चेपन को आभिजात्यता में बदल लेती है। हिन्दी या कहें भारतीय साहित्य के प्रसिद्ध प्रेम-उपन्यासों में अपनी विशेष जगह रखने वाले उपन्यास 'कसप' की बेबी के चरित्र में उत्तरोत्तर विकास और स्थैर्य दिखाई देता है। भावनात्मक और शैक्षणिक स्तर पर। उसके प्रेमी डी.डी. में भी विकास है, मगर, वहाँ भावों का उछाह और निश्छलता कम और महत्वाकांक्षाओं की फुर्ती और व्यावहारिकता अधिक है।

बेबी के लिखे पत्रों में ऐसी कई बातें आती हैं, जिनमें बेबी का मिजाज़ खुलकर सामने आता है। अलग-अलग अवसरों पर डी.डी. को लिखे उसके पत्रों के कुछ वाक्यों के बीच बेबी की वाकपटुता और चरित्रगत स्थिरता को समझा जा सकता है। उन ख़तों का मज़मून, उसके व्यक्तित्व को स्थापित करने में सहायक है। अपने एक पत्र में बेबी क्या ख़ूब लिखती है, "ज़िन्दगीभर सूतक मनाने के लिए पैदा नहीं हो रही यह बेबी।" (पृ. 227)

सचमुच बेबी जैसी लड़कियाँ शोक मनाने के लिए इस धरती पर नहीं आतीं। वे इस धरती की खट्टी-मीठी गंधों को अपने नथुनों में भरपूर भरती हैं और उन गंधों को लिए एक दिन मर जाती हैं। इनका मरना किसी को पसन्द नहीं आता, मगर यह दुनिया तो आने-जाने की स्थली ही ठहरी। बेबी और डी.डी. की प्रेम कहानी विवाह में परिणत नहीं होती, यह सच है। वे एक-दूजे से विलग हुए, सच है। इस फ़ानी दुनिया से भी वे एक दिन विलग होंगे, सच है मगर, फ़िलहाल उपन्यास के कथानक में लौटते हैं, जहाँ वे अपना-अपना जीवन जी रहे हैं। बेबी विवाहित है और आई.ए.एस. श्यामसुन्दर मिश्र की पत्नी है। उसका लाटा अब 'कभी किसी और समय का लाटा' बन चुका है मगर जब लाटा है तो वैसी हरकतों से वह बाज़ भला क्योंकर आए! वह मैत्रेयी की बेटी को अपनी और बेबी की प्रेम-कथा बतला देता है। वह इतना तो कर ही सकता है, ख़ासकर मनोहर कथाकार की कथा-दुनिया में आकर। और बेबी को भी भला इन बातों से कब कोई फ़र्क़ पड़ा! वह स्वयं एक विदुषी के रूप में अपनी जगह बना चुकी है। बावजूद इसके, मैत्रेयी को वह कभी भी घुड़क सकती है! वह बेबी जो है, चिर-खिलंदड़ी। मैत्रेयी मिश्र उसका तन है जिसकी आत्मा में बेबी

बसती है। ठीक वैसे ही जैसे पहले वह शरीर मैत्रेयी शास्त्री का था, जिसमें वह निवास करती थी। शास्त्रीजी की मलेच्छ शिष्या द्वारा मैत्रेयी का बेबी रखा गया यह नाम, मैत्रेयी के बड़े भाई को भी तो ख़ूब पसन्द आया था। बेबी के लिए मैत्रेयी एक अन्नमयकोश है। मैत्रेयी नाम के इन दो भिन्न चोलों में रहता हुआ बेबी का मन अपनी राह चलता है। पाठक उस राह पर चलते हुए उसे कभी इस ओर से तो कभी उस ओर से निहारते हैं। कनखियों से देखते और मुस्कुराते हैं। बेबी के चरित्र के भीतर उपन्यासकार जिस तरह से उतर पाया है, वह कमाल का उसका कौशल ठहरा।

डी.डी. प्रतिभावान, विकासशील और मेहनती है मगर वह कोई मज़बूत और स्थिरचेता व्यक्तित्व नहीं है। उसमें तमाम कुंठाएँ और कमियाँ हैं, मगर उसे अकुंठ भाव से चाहती रही है बेबी। पूरे परिवार के साथ लड़-झगड़कर वह डी.डी. को स्वीकारती है और अंततः अपने परिजनों को मनाने में कामयाब होती है। वह अपने बचपने को बचपना नहीं समझती, उसे पूरे आत्मविश्वास से आगे बढ़ाती है। यह उस खिलंदड़ी के भीतर अपनी स्वाभाविकता को बख़ूबी समझने की एक बड़ी नेमत है। सबके बीच बेबी डी.डी. को अपना पति मानती है। मगर हाय री डी.डी. की उलझन, वह उस बाले की निश्छल भावना को नहीं समझ पाता है। और फिर जिस धुन में वह 'डी.डी. द मूडी' (पृ. 10) उसकी बात नहीं मानता है, उसकी वही धुन इस उपन्यास को कभी समाप्त न होनेवाली किसी कसक के साथ छोड़ जाती है। उसके चरित्र की कुछ गाँठें लेखक शुरू में ही बताता चलता है। बेबी की भी। बीच की इन घटनाओं में जैसे वे गाँठें एक-एक कर खुलती चली गई हैं।

किसी गल्प की भाषा ऐसी बाँध सकनेवाले कैसे सम्भव होती है, इस पर बहुत कुछ कहा जाता रहा है, मगर कंधे उचकाकर क्या जाने की तर्ज़ पर कसप भी तो कहा जा सकता है! सभी जानते हैं कि 'कसप' अपेक्षाकृत काफ़ी कम समय में रचा गया उपन्यास है। कार्यालय की तत्कालीन राजनीति से उद्विग्न और उदासी की घोर मनोदशा में मनोहर श्याम जोशी इसे आरम्भ करते हैं। वे स्वयं बताते हैं, "चालीस दिन मैं अपने को अपने संसार से लगभग काटकर अपने कथानायक डी.डी. से जोड़े रहा। लिखते समय मेरे वर्तमान संसार की आवाज़ तक मेरे कान में न पड़े, इस नीयत से वॉकमैन पर यूरोपीय इलेक्ट्रॉनिक संगीतकार वान जेलिस की वह कृति बजाता रहा जो उस ज़माने की बहुचर्चित फ़िल्म 'चैरिएट्स ऑफ़ फ़ायर' में नेपथ्य संगीत के रूप में प्रयुक्त की गई थी।"

'कसप' के भाषाई उच्चावच और आँचलिकता से भरे उसके सौन्दर्य को लेकर भी बहुत कुछ कहा जाता है।

कथा की भाषा पर नहीं, कथा की नायिका बेबी पर जाते-जाते पुनः लौटते हैं। कुमाऊँनी हिन्दी के लहजे का सहारा लेते हुए कहें तो बहुत ही परिपक्व दिखती है बेबी। कुछ ऐसी कि डी.डी. भी मानने लगता है कि वह उसके योग्य नहीं था। 'कसप' को पढ़ते हुए कई लड़कियाँ-महिलाएँ जाने-अनजाने बेबी जैसी होना-जीना चाहती रही हैं। यह किसी किरदार की बड़ी सफलता कही जाएगी। ❑



जन्मदिवस पर विशेष

हिमांशु श्रीवास्तव
पत्रों एवं स्मृतियों में

'लोहे के पंख' जैसे उपन्यास के महत्वपूर्ण होने का पता मुझे 1982 में बारामूला (कश्मीर का सीमावर्ती ज़िला)में पदस्थापित होने के दौरान महत्वपूर्ण आलोचक रामविलास शर्मा की पुस्तक 'कथा विवेचना और गद्य शिल्प' में संकलित 'कथा साहित्य और श्रमिक जीवन' लेख से मिला।



भारत भारद्वाज
ई-मेल : varshab0508@gmail.com

11 मार्च, 1934 ई. में बिहार के सारण (अब छपरा) ज़िले के दिघवारा अँचल के हराजी गाँव में जन्मे कथाकार हिमांशु श्रीवास्तव, यदि आज जीवित होते, तो उनकी उम्र लगभग 90 वर्ष होती। उनसे कभी मुझे मिलने का सौभाग्य नहीं मिला, लेकिन उनकी रचनाओं से मैं परिचित था। बहुत बाद में उनसे वर्षों मेरा पत्राचार रहा और उनके लेखन के सन्दर्भ में कई सामग्री मैंने उन्हें भेजी थी और कुछ सामग्री उन्हीं के आग्रह पर राष्ट्रीय अभिलेखागार से मैं प्राप्त करने की कोशिश कर रहा था कि अचानक मुझे उनके दुःखद निधन की सूचना मिली।

संभवतः 1957 में गर्मियों की छुट्टियों में मैंने हिमांशु श्रीवास्तव का, तब तक अपनी दृष्टि में, पहला उपन्यास 'लोहे के पंख' पढ़ा था। उपन्यास अपेक्षाकृत थोड़ा मोटा था, लेकिन किसान-मज़दूर की संघर्षपूर्ण ज़िन्दगी से सम्बन्धित था, इसलिए दम साधकर इसे मैं पढ़ गया। इसके वर्षों बाद उनका दूसरा उपन्यास 'नदी फिर बह चली' और 'हंस' मासिक (सम्पादक : राजेन्द्र यादव) में प्रकाशित उनकी कहानियाँ पढ़ने का मुझे अवसर मिला। वैसे फिर एक बार मुझे 'लोहे के पंख' की याद आई थी, जब किसी कारणवश मज़दूर की

यातनापूर्ण स्थिति के बारे में किसी नवोदित उपन्यासकार की कोई किताब पढ़ी थी।

शायद 'हंस' अक्तूबर-नवम्बर 1992 अंक में प्रकाशित उनकी किसी कहानी को पढ़कर मैंने उन्हें पहला पत्र लिखा था, जिसका तत्काल उत्तर उन्होंने चार दिसम्बर को दिया ....

प्रिय बन्धु,

सप्रेम नमस्कार!

कृपा पत्र 28 नवम्बर, 92 मिला। प्रसन्नता हुई। मैं Coronary angiography कराने के लिए जी.बी. पन्त अस्पताल, नई दिल्ली में दाख़िल हो गया था। वहाँ 30 अक्तूबर 1991 से 6 नवम्बर 1991 तक रहा। कई मित्र मिलने आए थे।.... राजेन्द्र यादव जो मेरे समकालीन एवं मित्र हैं, वे दो-तीन बार आए। आप नहीं आ सके, इसके लिए अफ़सोस क्यों? कभी तो हम मिलेंगे। 'लोहे के पंख' को आप अब भी याद करते हैं, यह बड़ी बात है। मैं अनेक रोगों से ग्रस्त हूँ। ....आप 'हंस' में एक कॉलम लिख रहे हैं, यह सुखद सूचना है।



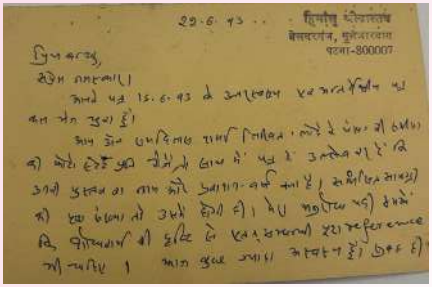
हिमांशु श्रीवास्तव
(11 मार्च, 1934 - 26 मई, 1996)

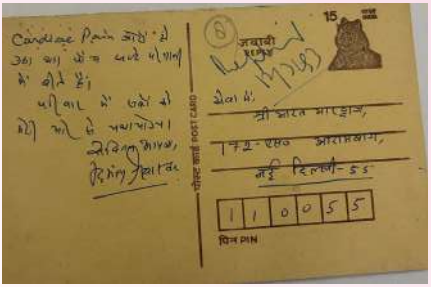
सविनय आपका

ह. हिमांशु श्रीवास्तव

(कार्ड के ऊपर हिमांशु श्रीवास्तव, बेलवरगंज, गुलज़ारबाग़, पटना-800007 की मुहर लगी है)

दूसरा कार्ड उन्होंने दैनिक 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित इंदु जैन के कविता-संग्रह पर मेरी समीक्षा पढ़कर लिखाया। इस पत्र में 'लोहे के पंख' और 'नदी फिर बह चली' की प्रति संभवतः दिल्ली में न मिलने की आशंका के साथ उन्होंने हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी का पता भी लिखा था। अपने 18 जनवरी, 1993 के पत्र में उन्होंने मुझे 'नवभारत टाइम्स' के सम्पादक विद्यानिवास मिश्र को प्रेषित अपने लेख 'लोकतान्त्रिक सरकार और लेखक संगठन' की प्रकाशन स्थिति के बारे में पता करने का आग्रह किया था। इस कार्ड के अंत में उन्होंने एक मार्मिक बात लिखी थी। "चिकित्सक से समयानुसार चेक कराता रहता हूँ पर यह रोग अब मुझे आप बंधुओं के बीच से कभी झटक लेगा और आपको शोक सभा आयोजित करनी पड़ेगी।" हमारे बीच पत्राचार का यह सिलसिला पाँच-छह वर्षों तक चला। अपने पत्रों में प्रायः मेरे पटना जाने पर मिलने का वे आग्रह करते। वे पोस्टकार्ड पर ही अधिकांश पत्र लिखते थे। एक पत्र में उन्होंने मुझे सूचित किया- "आपके अग्रज नवलजी (हिन्दी के अग्रणी आलोचक नंदकिशोर नवल) मेरे मित्रों में रहे हैं। संभवतः तीन साल पूर्व बहुत बीमार पड़ने से पहले एक दिन यहाँ के हिन्दी





विभाग, पटना विश्वविद्यालय में चला गया था। आपके अग्रज मिले थे। बड़े प्रेम से मिले।"

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आज़ाद हिन्द फ़ौज से सम्बन्धित एक महत्वाकांक्षी उपन्यास लिखने की उनकी योजना थी। 23 मई 1993 को लिखे अंतरदेशीय पत्र में उन्होंने लिखा, "आज़ाद हिन्द फ़ौज के तीन अधिकारियों-(ढिल्लन, सहगल, शाहनवाज़) पर लाल क़िले में मुक़दमा 5-11-45 से 21-12-45 तक लगातार चलता रहा। मेरे पास इस सन्दर्भ में कुछ जानकारियाँ हैं, कुछ जुटाता भी रहा हूँ। प्रेस कॉपी तैयार करने और किसी प्रकाशक से बात होने में अभी समय लगेगा। इस बीच मैं चाहता था कि मेरे पास मुक़दमे की सुनवाई के दौरान के कुछ चित्र अवश्य हों। मेरे अनुमान से ऐसे चित्र गृह विभाग के अभिलेखागार में अवश्य होंगे। इस सन्दर्भ में मेरी सहायता के लिए आगे बढ़ने वाला आपके सिवा कोई और नहीं है। अतः आप प्रयास करके देखिए।" आगे उन्होंने वांछित चित्रों की सूची दी। साथ ही इस मद पर ख़र्च होने वाली राशि की जानकारी भी चाही थी।

'लोहे के पंख' जैसे उपन्यास के महत्वपूर्ण होने का पता मुझे 1982 में बारामूला (कश्मीर का सीमावर्ती ज़िला) में पदस्थापित होने के दौरान महत्वपूर्ण आलोचक रामविलास शर्मा की पुस्तक 'कथा विवेचना और गद्य शिल्प' में संकलित 'कथा साहित्य और श्रमिक जीवन' लेख से मिला, जो उन्हीं के द्वारा सम्पादित 'समालोचक' पत्रिका के संभवतः 1958 अंक में उस पुस्तक की रिव्यू के रूप में छपा था, जिसकी चर्चा अपने किसी पत्र में मैंने हिमांशुजी से की थी। चूँकि मणिपुर और कुछ अन्य विश्वविद्यालयों के कुछ शोध छात्र उनके साहित्य पर शोध कर रहे थे, इसलिए इस पुस्तक की उन्हें आवश्यकता थी। मैंने उन्हें पुस्तक तो नहीं, लेकिन पुस्तक के शीर्षक, प्रकाशक, मूल्य आदि की जानकारी के साथ उक्त रिव्यू की फ़ोटोप्रति अवश्य भेजी थी। मेरे लिए हैरानी की बात यह है कि डॉ. शर्मा जैसे कठोर आलोचक ने आश्चर्यजनक रूप से इस उपन्यास की प्रशंसा की थी। इन उपन्यासों ने यथार्थवाद की परम्परा को दृढ़ किया है और सबसे बड़ा काम यह

किया है कि हिन्दी उपन्यास को जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, अश्क के क्रान्तिकारी रोमांसवाद के दलदल से बाहर निकाला है। इन उपन्यासों में जनजीवन की ताज़गी है, अतृप्त यौन आकांक्षाओं के बदले मेहनत करने वाले स्त्री-पुरुषों के वास्तविक सुख-दुःख की कहानी है।" अंत में उन्होंने लिखा था, "कुल मिलाकर जनसाधारण के जीवन और संघर्ष को चित्रित करने वाला यह एक बहुत सफल उपन्यास है।"

हिमांशुजी प्रायः अपने पत्रों में अपनी बीमारी का ज़िक्र किया करते थे। हृदय के दर्द से परेशान भी रहते थे। रामविलास शर्मा द्वारा लिखित समीक्षा की फ़ोटोप्रति मिलने पर न केवल उन्होंने कृतज्ञता प्रकट की थी, बल्कि विनम्रतापूर्वक यह भी लिखा था, "आप आज़ाद हिन्द फ़ौज वाले मुक़दमे की सुनवाई वाले चित्रों के लिए सुविधा मिलने पर ही प्रयास करें। दैनिक जीवन की व्यवस्थाओं से इतना समय निकालकर मेरे लिए आप जो भी कर रहे हैं, यह मेरे प्रति आपकी महाशयता, सदाशयता का परिचायक है, वैसे मेरी कौन सुनता है!" तिथि रहित एक कार्ड में उन्होंने लिखा था, "जीवन और मृत्यु का साधारण दर्शन तो, बस यही मानना होगा कि इस जागतिक प्लेटफ़ार्म पर हम सभी वापसी टिकट के साथ आए हैं। निश्चित तिथि पर ट्रेन आती है और हमें लिवा ले जाती है। हम परस्पर मोहवश जीवन मंच पर भाँति-भाँति की भूमिकाएँ निभाते भर हैं। ....आपके पत्रों को मैं बड़े प्रेम से पढ़ता हूँ। आने पर ख़ुशी होती है। अतः पत्र दिया कीजिए।" फिर 11 मार्च, 94 के पत्र में उन्होंने लिखा, "यह जानकर विशेष प्रसन्नता हुई कि आप अपनी पुस्तकों की पाण्डुलिपि तैयार करने में लग गए हैं। यह आवश्यक कार्य है। जिस तरह अव्यक्त प्रेम अपनी सार्थकता का दमन करने वाला होता है, उसी तरह कलाकृतियों का प्रकाशन न होना प्रतिभा पर काली छाया फैलाने जैसा होता है।" अपने पत्रों में हिमांशुजी न केवल अपनी प्रकाशित रचनाओं की जानकारी देते थे बल्कि मेरी प्रकाशित रचनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया भी। मेरे पास अब तक उपलब्ध उनका आख़िरी पत्र 18 जनवरी 1995 का लिखा है, जिसमें नव वर्ष की मंगल कामनाओं के साथ उन्होंने लिखा था, "सर्दी बहुत है और डॉक्टरों की सख़्त चेतावनी के बावजूद कुछ लिखना ही पड़ता है।" यद्यपि उनके पत्रों का जवाब मैं तत्परता से देता था, फिर भी व्यस्तताओं के कारण ग़फ़लत हो ही जाती थी। "बहुत दिनों से आपका पत्र नहीं आया, कैसे हैं? 'हंस' के माध्यम से आपसे मिलने का अवसर मिल जाता है और पत्रिकाओं में भी लिख ही रहे होंगे।"

यह मेरा दुर्भाग्य है कि उनसे पत्राचार के बाद न मैं पटना गया और न उनसे मिलने का मुझे अवसर मिला। फिर अचानक एक दिन मुझे पता चला कि हिमांशुजी नहीं रहे। पटना में उनको कार्डियक अरेस्ट हुआ और देखते-देखते हम सबों

से अलविदा हो गए। रेणु उनसे पहले ही जा चुके थे, 1977 में और हिमांशुजी 26 मई, 1996 को। एक आत्मीय पारिवारिक जन के सहसा बिछुड़ने जैसा दुःख मुझे हुआ। आज उन पर चन्द पंक्तियाँ लिखकर उस दुःख से और अपने पर उनके ऋण से थोड़ा मुक्त महसूस कर रहा हूँ। उन पर कभी लिखना है, इतना तो जानता था, लेकिन उन पर लिखने के लिए जिन चीज़ों को सम्भाल कर रखने की ज़रूरत थी, आज मेरे पास नहीं है। उनके ढेर सारे पत्र हैं, रामविलासजी की पुस्तक नहीं है, पीले जर्जर काग़ज़ों पर छिटपुट बेतरतीब लिखे नोट्स तो हैं, लेकिन 'हंस' और अन्य पत्रिकाओं के अंक नहीं हैं, जिसमें उनकी रचनाएँ और तस्वीर छपी थीं। मैंने उनका जीवन परिचय और तस्वीर उपलब्ध कराने के लिए उनके परिवारजनों को बेलवरगंज, गुलज़ार बाग़, पटना पत्र भी लिखे लेकिन मुझे कोई जवाब नहीं मिला।

बस अब यही सोचता हूँ, क्या किसी लेखक से मिले बिना हम उसे नहीं जान सकते? अब तक के अपने लम्बे जीवन में कई बार मैंने महसूस किया है कि कई बार लेखक से, मिलने से उसके लेखन से मन पर बनी उसकी छवि खंडित हुई है। यह अच्छा हुआ कि हिमांशुजी की जैसी छवि मेरे मन पर अंकित हुई, उनके हस्तलिपि युक्त लेखन से उनके लगभग 20 पत्रों से जस-का-तस अक्षुण्ण है। मैं कह सकता हूँ कि यह छवि न केवल ख़ूबसूरत है, बल्कि बेहद नाज़ुक और कोमल भी। बेशक, यह दर्द मुझे सालता रहेगा कि मुझसे उन पर शोक सभा का आयोजन भी न हो सका। वैसे शोकसभा की औपचारिकता में मेरा विश्वास नहीं है। असली चीज़ है उस लेखक को तब याद करना जब अधिकांश उनके समकालीन और बाद की पीढ़ी लगभग उन्हें भूल चुकी होती हैं। उनकी स्मृति को हार्दिक श्रद्धांजलि!

पुनश्च-बिल्कुल हाल के वर्षों में अपने आत्मीय एवं स्नेही मित्र भारत यायावर (वह मुझे 'मीता' कहता था; 'रेणु' की बेहद चर्चित कहानी 'तीसरी कसम' की हीरा बाई और हिरामन की तर्ज़ पर) लिखित कालजयी उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु की जीवनी दो खण्डों में (प्रकाशक : सेतु प्रकाशन, नोएडा) आई है। पहला खण्ड विस्तृत लगभग 550 पृष्ठ और दूसरा खण्ड अधूरा। बीच में ही 'मीता'-22 अक्तूबर, 2021 को- हमेशा के लिए हम सबों से बिछुड़ गया। इस जीवनी में रेणु के बारे में विस्तृत जानकारी तो है ही, हिमांशुजी से कैसे परिचय हुआ उनका, के साथ एक दुर्लभ सूचना यह भी है कि रेणु ने 1953 ई. में 'मैला आँचल' (प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1954, सत्रहवाँ संस्करण 1992) का पहला ड्राफ़्ट हिमांशुजी को ही सुनाया था। 'मीता' को भी मेरी अश्रुपूरित हार्दिक श्रद्धांजलि! ❑



अवसान दो संगीत विभूतियों का

राशिद ख़ान प्रतिभासम्पन्न गायक थे। उनमें सीखने की अद्भुत ललक थी। शागिर्दी उन्होंने भले ही सिर्फ़ अपने नाना की क़बूल की, लेकिन प्रेरणा उस्ताद अमीर ख़ाँ और बड़े ग़ुलाम अली ख़ाँ से लेकर पं. भीमसेन जोशी तक से ली। उन्होंने बांग्ला भाषा भी सीखा।

प्रभा अत्रे के गुरु पं. सुरेश बाबू माने ने उन्हें संगीत सिखाते हुए एक गुरु मन्त्र दिया था, "जहाँ से भी, जो भी अच्छी चीज़ें मिले उसे अपना लो।" हालाँकि, उस समय प्रभाजी अल्हड़ अवस्था में थीं लेकिन, गुरु के कहे ये शब्द उनके मानस में बैठ गए थे। यही कारण था कि वे लगातार अपनी गायकी निखारती रहीं, विकसित करती रहीं, समृद्ध करती रहीं।



पं. विजयशंकर मिश्र
ई-मेल : anhad.sam@gmail.com

सन् 2024 की शुरुआत हुई ही थी। नववर्ष की बधाइयों और शुभकामनाओं का सिलसिला अभी थमा भी नहीं था कि 9 जनवरी को रामपुर-सहसवान घराने के सुप्रसिद्ध और लोकप्रिय गायक उस्ताद राशिद ख़ान के निधन के समाचार ने दुनियाभर में फैले उनके लाखों प्रशंसकों की आँखों में अश्रुओं का सैलाब ला दिया। पिछले चार वर्षों से प्रोस्टेट कैंसर से जूझ रहे, राशिद मात्र 55 वर्ष के थे। उन्होंने मात्र 11 वर्ष की उम्र में सांगीतिक मंच पर पदार्पण किया था और अपने 44 वर्षों के मंचीय जीवन में संगीत की दुनिया में अपनी पुख़्ता और विशिष्ट पहचान बना ली थी।

रामपुर-सहसवान घराना हरफ़नमौला संगीतकारों का घराना है। इस घराने में उस्ताद मेहबूब ख़ाँ, उस्ताद इनायत हुसैन ख़ाँ, उस्ताद मुश्ताक हुसैन ख़ाँ, उस्ताद इफ़्तेख़ार हुसैन ख़ाँ, उस्ताद निसार हुसैन ख़ाँ, उस्ताद सरफ़राज़ हुसैन ख़ाँ, उस्ताद ग़ुलाम मुस्तफ़ा ख़ाँ और उस्ताद ग़ुलाम सादिक़ ख़ाँ सहित उस्ताद राशिद ख़ान जैसे प्रतिष्ठित गायक हुए। राशिद ख़ान इस परम्परा की 5वीं पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

1 जुलाई, 1968 को उत्तर प्रदेश के बदायूँ शहर में जन्मे राशिद ख़ान ने अपने नाना उस्ताद निसार हुसैन ख़ाँ

से बचपन में ही सीखना शुरू कर दिया था। उस्ताद निसार हुसैन ख़ाँ को जब कोलकाता से आई.टी.सी. संगीत रिसर्च अकादमी में गुरु का दायित्व सम्भालने के लिए आमंत्रित किया गया तो आठ वर्षीय नन्हें राशिद भी अपने माता-पिता का मोह त्यागकर नाना की ऊँगलियाँ थामे कोलकाता की ओर चल दिए और फिर कोलकाता के ही होकर रह गए। उस्ताद निसार हुसैन ख़ाँ राशिद को बहुत प्यार करते थे लेकिन, इस प्यार ने उन्हें कभी भी नन्हें राशिद से कड़ाई से रियाज़ करवाने में बाधा नहीं बनने दिया। वे पूरी उदारता और प्रेम से राशिद को सिखाते थे तो पूरी कड़ाई से कठोर अभ्यास भी करवाते थे। इस मामले में न तो वे नरम दिल थे और न रहम दिल। यही कारण था कि सिर्फ़ 11 वर्ष की उम्र में जब नन्हें राशिद ने अपना सार्वजनिक गायन प्रस्तुत किया तो लोगों को उनमें उस्ताद निसार हुसैन ख़ाँ का असर साफ़ दिखा।



उस्ताद राशिद ख़ान
(1 जुलाई, 1968 - 9 जनवरी, 2024)

राशिद ख़ान प्रतिभासम्पन्न गायक थे। उनमें सीखने की अद्‌भुत ललक थी। शागिर्दी उन्होंने भले ही सिर्फ़ अपने नाना की क़बूल की, लेकिन प्रेरणा उस्ताद अमीर ख़ाँ और बड़े ग़ुलाम अली ख़ाँ से लेकर पं. भीमसेन जोशी तक से ली। उन्होंने बांग्ला भाषा भी सीखा। आवाज़ के गुणधर्म और कंठ-संस्कृति का पालन करते हुए अपनी आवाज़ में वह विविधता पैदा की कि विलंबित और द्रुत ख़याल से लेकर तराना, ठुमरी, दादरा, ग़ज़ल और भजन सहित हिन्दी तथा बांग्ला फ़िल्मों में भी गाए। नतीजा यह हुआ कि वे वरिष्ठ कलाकारों के चहेते बन गए तो युवा दिलों की धड़कन भी। यह उनकी बहुत बड़ी सफलता थी कि एक-से-एक दिग्गज गायकों की मौजूदगी के बावजूद पं. भीमसेन जोशी जैसे गायक राशिद ख़ाँ का गाना सुनकर कहते थे, "राशिद का गाना सुनकर कह सकता हूँ कि भारतीय शास्त्रीय संगीत के भविष्य को कोई ख़तरा नहीं है।" पं. भीमसेन जोशी के 75वें जन्मदिन पर दिल्ली दूरदर्शन के लिए उनसे भेंटवार्ता करते हुए भी जब मैंने उनसे किसी मनपसन्द गायक का नाम पूछा था तब भी उन्होंने सिर्फ़ एक नाम लिया था, 'राशिद ख़ान।' पं. भीमसेन जोशी ने उन्हें अपने साथ बैठकर, मंच साझा करते हुए गाने का भी सुअवसर प्रदान किया था जबकि, उस समय पं. जसराज और पं. राजन और पं. साजन मिश्र जैसे गायक संगीत के आकाश में छाए हुए थे। रागों की सिलसिलेवार बढ़त, शब्दों और स्वरों का सुस्पष्ट उच्चारण और धारदार पैनी तानों के साथ-साथ राशिद ख़ान की ख़ास विशेषता थी। हर तरह की गायकी के मर्म को समझकर गाना और उस गायकी के अनुसार ही कंठ स्वर का प्रयोग राशिद ख़ान की वह विशेषता थी जिसने उन्हें हर दिलअज़ीज़ बना दिया था। उनकी प्रतिभा

और दिनोंदिन बढ़ती लोकप्रियता ने ही हिन्दी और बांग्ला फ़िल्मकारों को उनकी ओर आकृष्ट किया और उन्होंने हिन्दी, बांग्ला तथा मराठी फ़िल्मों में गाकर अपनी प्रतिभा के एक और पक्ष का बहुत अच्छा परिचय दिया था। उन्होंने हिन्दी फ़िल्म 'जब वी मेट' के 'आओगे जब तुम साजना अंगना फूल खिलेंगे' सहित फ़िल्म 'गोल्डफ़िश', 'भी बसंत राव' (मराठी), 'मीटिन माशी' (बांग्ला), 'मोटों', 'इश्किया', 'बोदका डायरी', 'शादी में ज़रूर आना', 'कादम्बरी', 'हेट स्टोरी', 'इश्क', बांग्ला फ़िल्म 'बारी बारी जा', 'राज 3', 'चक्रव्यूह', 'मौसम', 'माई नेम इज़ ख़ान', 'मॉर्निंग वॉक' एवं 'किसना द वारियर पोएट' जैसी फ़िल्मों को अपने इंद्रधनुषी सुरीले कंठ स्वरों से सजाया था लेकिन, यहाँ यह कहना भी उचित होगा कि राशिद ख़ान ने दोनों नावों की सवारी सफलतापूर्वक की। उन्होंने फ़िल्मी गीतों को न तो शास्त्रीय बनने दिया और न ही अपने शास्त्रीय संगीत में फ़िल्मी रंग घुलने दिया।

राशिद ख़ान को उत्तर प्रदेश सरकार का संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार मिला तो बंगाल सरकार का बंगभूषण सम्मान भी। केन्द्रीय संगीत नाटक अकादेमी पुरस्कार से भी उन्हें सम्मानित किया गया। ग्लोबल एकेडमी अवार्ड सहित उन्हें कई अन्य पुरस्कार भी मिल चुके हैं। इतना ही नहीं उन्हें पद्मश्री और पद्मभूषण जैसे अलंकरण भी मिल चुके थे लेकिन, राशिद की प्रतिभा के चढ़ते सूरज को न जाने किस की नज़र लग गई कि वह सूरज भरी दोपहरी में ही अस्त हो गया। संतोष का विषय है कि राशिद ख़ान सुपुत्र अरमान सहित उनके कई शिष्य भी अच्छा गा रहे हैं। आशा करनी चाहिए कि ये राशिद ख़ान की परम्परा को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाएँगे।

***

राशिद ख़ान के लिए बहने वाले आँसू अभी थमे भी नहीं थे कि 13 जनवरी को कैराना घराने की सर्वाधिक वरिष्ठ और प्रतिष्ठित गायिका पद्मविभूषण विदुषी प्रभा अत्रे के निधन का समाचार मिला। वे 92 वर्ष की थीं। विदुषी प्रभा अत्रे का अवसान एक कंठ सिद्ध गायिका, सिद्धहस्त लेखिका, स्वप्निल परिकल्पनाओं से परिपूर्ण संगीत संरचनाकार, मौलिक चिन्तक, उदार गुरु एवं सफल कार्यक्रम आयोजिका का अवसान है। एक व्यक्ति में कई व्यक्तित्व का जीवन्त प्रमाण थीं विदुषी प्रभा अत्रे।

13 सितम्बर, 1932 को पुणे में एक मराठी परिवार में जन्मी प्रभाजी के पिता का नाम दत्तात्रय पिलाजी आबा साहब अत्रे एवं माता का नाम इंदिरा अत्रे था। दोनों पेशे से अध्यापक थे। माँ को कविताएँ लिखने का भी शौक था, और अन्य मराठी परिवारों की तरह इस परिवार की भी कलाओं में गहरी अभिरुचि थी जिसका प्रभाव बालिका प्रभा पर स्वाभाविक रूप से पड़ा। पुणे वैसे भी संगीत का गढ़ है। सिर्फ़ गणेशोत्सव आदि के अवसर पर ही नहीं, अन्य विशेष अवसरों पर वहाँ संगीत के कार्यक्रम होते रहते हैं। इन कार्यक्रमों की दर्शक दीर्घा में अत्रे परिवार को सम्मानपूर्वक बैठाया जाता था। प्रभाजी

भी अपने माता-पिता के साथ बैठकर रात-रातभर इन कार्यक्रमों का आनंद लिया करती थीं।

प्रभाजी को संगीत के सुरों से सर्वप्रथम परिचित कराया पुणे के हारमोनियम वादक मास्टर गाडगिल ने। 10 वर्ष की उम्र में प्रभाजी ने विजय करंदीकरजी से सीखना शुरू किया। प्रभाजी अपने गुरु द्वारा सिखाए गए गीतों को तो गाती ही थीं, साथ ही रेडियो पर रोशन आरा बेगम, नूरजहाँ, बेगम अख़्तर और उस्ताद बड़े ग़ुलाम अली ख़ाँ के गाए हुए गीतों को भी सुन-सुनकर याद करके गाया, गुनगुनाया करती थीं। जब प्रभाजी 15 वर्ष की हुईं, तब 1947 में कैराना घराने के प्रतिष्ठित गायक पं. सुरेश बाबू माने उर्फ़ बाबूरावजी ने उन्हें अपनी शिष्या के रूप में अपनाया, और प्रभाजी कैराना घराने की विधिवत् शिक्षा प्राप्त करने लगीं।



विदुषी प्रभा अत्रे
(13 सितम्बर, 1932 - 13 जनवरी, 2024)

पं. सुरेश बाबू माने कैराना घराने के महान् गायक उस्ताद अब्दुल करीम ख़ाँ के पुत्र और शिष्य थे। उनसे प्रभाजी ने छह वर्षों तक सीखा। 1952 में पं. सुरेश बाबू माने की मृत्यु हृदयाघात से हो गई। गुरु के आकस्मिक और असामयिक निधन से प्रभाजी के मन में संगीत के लिए विरक्ति पैदा हो गई थी। एक वर्ष तक तो उन्होंने तानपूरा को हाथ भी नहीं लगाया, लेकिन बाद में लोगों के समझाने पर सुरेश बाबू की छोटी बहन गान हीरा विदुषी हीराबाई बड़ोदकर से सीखना शुरू किया। इसके लिए उन्हें भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय से छात्रवृत्ति भी मिली। अभी तक प्रभाजी संगीत को सिर्फ़ शौक के रूप में ही सीख रही थीं। उनका लक्ष्य संगीतकार नहीं, बल्कि डॉक्टर बनना था लेकिन, नियति उन्हें दूसरी ओर लिए जा रही थी। बीच में कुछ दिनों तक उन्होंने पं. हज़ारी लाली से कथक नृत्य की भी शिक्षा प्राप्त की, और फिर मेडिकल की पढ़ाई छोड़कर क़ानून की पढ़ाई करने लगीं। बी.एस.-सी. करने के बाद उन्होंने पुणे से ही क़ानून की पढ़ाई भी पूरी कर ली।

विदुषी हीरा बाई बड़ोदकर ने प्रभा अत्रे को अपने साथ मंच पर बैठाना शुरू किया। शुरू-शुरू में ये उनके पीछे बैठकर तानपूरा बजाया करती थीं। फिर, हीरा बाई ने बीच-बीच में सुर लगाने के लिए भी प्रोत्सहित करना शुरू किया। हीरा बाई बड़ोदकर स्वयं भी वर्ष में दो कार्यक्रम आयोजित करती थीं, और उसमें भी प्रभाजी को गाने के अवसर मिलते थे। इस तरह प्रभाजी की मंच पर सक्रियता बढ़ती गई, और वे संगीत की ही होकर रह गईं। प्रभा अत्रे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न गायिका थीं। वे अच्छी गायिका होने के साथ-साथ कथक नृत्य की भी अच्छी जानकारी रखती थीं। उस समय महाराष्ट्र में

संगीत नाटक बहुत लोकप्रिय थे। इन संगीत नाटकों में संवाद अदायगी गीत-संगीत और नृत्य के माध्यम से होते थे। नट सम्राट बाल गंधर्व, मास्टर दीनानाथ मंगेशकर, भास्कर बुआ बखले, पं. कृष्णराव फुलंब्रीकर और पं. वसंत राव देशपांडे से लेकर पं. विनायक राव पटवर्धन, पं. सुरेश बाबू माने और विदुषी हीरा बाई बड़ोदकर तथा राम मराठे, जैसे अनेक संगीतकार इन संगीत नाटकों में सक्रिय रहे। ऐसे में युवा प्रभा अत्रे पर मराठी संगीत नाटककारों की भी दृष्टि पड़ी और उन्होंने प्रभाजी को इसके लिए आमंत्रित किया, जिसे प्रभाजी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। 'विद्याहरण', 'मंदार माला', 'सुभद्रा', 'लीलव', 'संशय कल्लोल', 'मृच्छकटिक' और 'मानापमान' नाटकों में उनकी भूमिका को काफ़ी सराहा भी गया।

दस-बारह वर्षों तक एक शास्त्रीय गायिका एवं एक रंगमचीय अभिनेत्री के रूप में वे अलग-अलग मंचों पर सक्रिय रहीं। फिर, उन्होंने स्वयं को शास्त्रीय संगीत को समर्पित कर दिया।

प्रभा अत्रे के गुरु पं. सुरेश बाबू माने ने उन्हें संगीत सिखाते हुए एक गुरु मन्त्र दिया था, "जहाँ से भी, जो भी अच्छी चीज़ें मिले उसे अपना लो।" हालाँकि, उस समय प्रभाजी अल्हड़ अवस्था में थीं लेकिन, गुरु के कहे ये शब्द उनके मानस में बैठ गए थे। यही कारण था कि वे लगातार अपनी गायकी निखारती रहीं, विकसित करती रहीं, समृद्ध करती रहीं। उन्होंने उस्ताद अमीर ख़ाँ और उस्ताद बड़े ग़ुलाम अली ख़ाँ की गायकी से प्रेरणा ली। कर्णाटकीय संगीत के भी कुछ गुणों को अपनाया। और इस तरह से गायक-गायिकाओं की भीड़ में स्वयं को प्रबुद्ध गायिका के रूप में स्थापित किया। वे बहुत अच्छी संगीत चिन्तक और विचारक भी थीं। आमतौर पर तराना गायकी को निरर्थक शब्दों वाली गायन शैली माना जाता है लेकिन, प्रभाजी उन निरर्थक शब्दों में भी अर्थ देखती थीं। यह उनकी सूक्ष्म दृष्टि का कमाल था। उनके सैकड़ों शोधपूर्ण आलेख प्रकाशित हो चुके हैं। अपने सारगर्भित व्याख्यानों और व्याख्यान-सह-प्रदर्शन कार्यक्रमों के लिए वे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सुविख्यात थीं। सर्जनात्मक प्रतिभा से ओत-प्रोत प्रभा अत्रे ने कई नवीन मिश्र रागों की भी रचना की थी। दरबारी कौंस, पटदीप मल्हार, अपूर्व कल्याण, शिवकली, रवि भैरव, भीमवंती, मधुर कौंस और भूप कल्याण जैसे नव सर्जित राग उनकी प्रतिभा के सर्जनात्मक पक्ष का परिचय देते हैं। प्रभा अत्रे ने इन रागों के अलावा हिन्दुस्तानी और कर्णाटकीय शैली के विभिन्न रागों में विभिन्न प्रकार की सैकड़ों बंदिशों की भी रचना की है, जो उनकी पुस्तकों में और उनकी शिष्याओं के पास सुरक्षित है।

नई विचारधारा को सामने लाने के कारण प्रभाजी की आलोचना भी कई बार हुई किन्तु वे तथ्यों को तर्कों की कसौटी पर परखने में विश्वास करती थीं। उनकी प्रवृत्ति में अंधानुकरण नहीं था। वे कहती थीं, "चूँकि रामकली भैरव अंग का राग है, अतः उसका नाम रामकली भैरव होना

चाहिए। बसंत मुखारी में बसंत कहीं नहीं है, इसलिए उसका नाम मुखारी भैरव ही उचित होगा। यमन को कल्याण ही कहना चाहिए। इसी तरह, वैरागी भैरव को सिर्फ़ वैरागी, श्याम कल्याण को सारंग कल्याण और गोरख कल्याण को सिर्फ़ गोरख कहना ही तर्कसंगत होगा।"

प्रभा अत्रे की मराठी, हिन्दी और अंग्रेज़ी में कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें 'स्वरमयी' (हिन्दी और मराठी), 'सुस्वराली' (मराठी), 'अंत स्वर' (काव्य रचनाओं का संकलन), 'स्वरांगिनी', 'स्वरंजनी' एवं 'स्वररंगी' विशेष उल्लेखनीय हैं। विदुषी प्रभा अत्रे द्वारा रचित रचनाओं में एक अलग तरह की सुकुमारता, लावण्य और सौन्दर्यबोध दृष्टिगत होता है।

कनाडा, अमरीका, नीदरलैंड और स्वीट्ज़रलैंड आदि जैसे कई देशों के विभिन्न नगरों में कार्यक्रम दे चुकीं प्रभा अत्रे एक सफल कार्यक्रम आयोजिका भी थीं। सन् 2000 में उन्होंने प्रभा अत्रे फ़ाउंडेशन नामक संस्था की स्थापना करके उसके तत्त्वावधान में कार्यक्रम आयोजित करने लगी थीं। उन्होंने विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन किया था। सिर्फ़ महिला कलाकारों को लेकर भी कई प्रकार के कार्यक्रम आयोजित किए थे।

आकाशवाणी आलेख, व्याख्यान पुस्तक, कार्यक्रम आयोजन एवं अपने प्रभावशाली गायन के माध्यम से संगीत की बहुविध सेवा करनेवाली बहुआयामी व्यक्तित्व की धनी स्वर साम्राज्ञी विदुषी प्रभा अत्रे को कई मान-सम्मान मिले थे। संगीत में उत्कृष्ट लेखन कार्य के लिए उन्हें महाराष्ट्र साहित्य परिषद् द्वारा मास्टर कृश्णराव फुलंब्रीकर सम्मान से सम्मानित किया गया था। पश्चिम बंगाल के तत्कालीन राज्यपाल के कर कमलों से उन्हें टैगोर अकादमी रत्न मिला था तो तत्कालीन राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के हाथों गोविंद लक्ष्मी गौरव पुरस्कार। मध्य प्रदेश शासन के कालिदास सम्मान और केन्द्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान (दिल्ली) सहित पद्मश्री, पद्मभूषण और पद्मविभूषण के अलंकरणों से भी उन्हें अलंकृत किया गया था। वे विभिन्न रूपों में सामाजिक और शैक्षणिक संस्थाओं से भी सक्रियता से जुड़ी हुई थीं। 92 वर्ष की उम्र में भी वे तन और मन से पूरी तरह स्वस्थ थीं। निधन के समय भी वे मुम्बई में होने वाले अपने कार्यक्रम की तैयारी में व्यस्त थीं, लेकिन 12 जनवरी की देर रात उन्हें कुछ घबराहट और बेचैनी का अनुभव हुआ और, यह बेचैनी जानलेवा साबित हुई। उन्हें दीनानाथ मंगेशकर अस्पताल ले जाया गया जहाँ चिकित्सकों ने उन्हें मृत्य घोषित कर दिया।

उस्ताद राशिद ख़ान और विदुषी प्रभा अत्रे दोनों को ही पूरे राजकीय सम्मान के साथ अन्तिम विदाई दी गई। तिरंगा ओढ़ाया गया, तोपों की सलामी और भव्यतम् विदाई दी गई। कहा जा सकता है कि दोनों संगीतकारों ने जितनी शानदार ज़िन्दगी जी, उतनी ही शानदार उनकी अन्तिम यात्रा भी रही। ❑

राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह की पुण्यतिथि पर विशेष

स्त्री-विमर्श के निकष पर 'पुरुष और नारी' उपन्यास

'पुरुष और नारी' उपन्यास की एक बड़ी विशेषता है कि इसमें पुरुष उठकर गिरता है और नारी गिरकर उठती है। "प्रस्तुत पुस्तक 'पुरुष और नारी' में श्रीमान् राजा साहब ने पुरुष और नारी के हृदय में उठने वालों अंतर्द्वन्द्वों का बड़ा ही मार्मिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। उनकी ख़ास-ख़ास वृत्तियों की गुत्थियों पर कुछ अजब निराले ढंग से प्रकाश डाला है।"



विनोद कुमार सिन्हा
ई-मेल : bksinha8809@gmail.com

स्त्री की पीड़ा, वेदना, पराधीनता, परनिर्भरता और आत्म-संचेतना के विषय में चिन्तन-मनन की जो प्रक्रिया है, उसे ही स्त्री-विमर्श कहा गया है।

स्त्री-विमर्श की चर्चा वस्तुतः पश्चिमी देशों से प्रारम्भ हुई। 1792 ईस्वी में इंग्लैंड की मैरी वालस्टॉनक्राफ़्ट ने 'विन्डीकेशन ऑफ़ दी राइट्स ऑफ़ विमैन' नामक पुस्तक लिखकर नारी अधिकारों की सर्वप्रथम माँग की थी।

1975 में पहली बार अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आठ मार्च को महिला-दिवस मनाने की घोषणा हुई।

राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह का उपन्यास 'पुरुष और नारी' 1939 में प्रकाशित हुआ था भारत में। भारत में उन दिनों स्त्री-विमर्श की चर्चा बहुत कम थी। नारी को लोग या तो देवी मानते थे (यत्र नार्यास्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता) या भोग्या, मानवी मानते ही नहीं थे।

माना जाता था कि साहित्यकार मात्र दर्पणकार नहीं होता, एक भविष्यवक्ता भी होता है। उन दिनों 'पुरुष और नारी' पुस्तक के प्रकाशक ने लिखा था–

"प्रस्तुत पुस्तक 'पुरुष और नारी' में श्रीमान् राजा साहब ने पुरुष और नारी के हृदय में उठने वालों अंतर्द्वन्द्वों का बड़ा ही मार्मिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। उनकी ख़ास-ख़ास वृत्तियों की गुत्थियों पर कुछ अजब निराले ढंग से प्रकाश डाला है।"

राजा साहब ने स्वयं उक्त पुस्तक की भूमिका में नारी को एक पहेली माना है–

"नारी की प्रकृति के तले बैठी है विश्व की चिरन्तन नारी-त्याग और सेवा की सहज वृत्ति। पुरुष में यह प्रेरणा शायद उसकी महत्वाकांक्षा की तह से फूटती है। इसीलिए तो वह आदर्श की ऊँचाई छूने को बड़ी सरगर्मी से झपट कर उठती है, पर उस चोटी की तपस्या पर टिक नहीं पाती।"

भूमिका के अंत में उन्होंने नारी को एक पहेली मानते हुए लिखा है, "जीवन की एक जटिल पहेली की यह तस्वीर यदि दिन की दुनिया में बोल न सकी तो यह कमी मेरी है, उस पहेली की नहीं।"

उन्होंने यह उपन्यास उस समय लिखा था, जब जलियाँवाला बाग़ की आग बुझी नहीं थी और साबरमती की फ़ैक्टरी में महात्मा गाँधी के निर्देश पर सत्य और अहिंसा के अमोघ अस्त्र ढलने लगे थे। उस अमोघ अस्त्र के कारण अंग्रेज़ों की दमन रूपी बारूद की छाती में भी आग लग गई थी। देशभक्ति के अहिंसक आंदोलन के गर्भ में ही 'पुरुष और नारी' उपन्यास का जन्म हुआ।

राजा राधिका रमण ने अपने उपन्यास में दो बातों पर विशेष ध्यान ही नहीं दिया, बल्कि मूल्यांकित भी किया–

जब तक गाँव में आज़ादी की क्रान्ति नहीं होगी तब तक गाँधी का सपना पूर्ण नहीं होगा।

राधिका रमण प्रसाद सिंह का मानना है कि आज़ादी की लड़ाई का श्रेय केवल पुरुषों को नहीं जाता, नारी को भी जाता है। पुरुषत्व मोह में लोग नारी के महत्व को भूल रहे हैं, पर नारी अबला नहीं सबला है। बिना नारी के सहयोग से पराधीन भारत को स्वाधीन बनाने का सपना कभी भी फलीभूत नहीं हो सकता। यही तो है नारी-विमर्श।

इस उपन्यास के दो पात्र हैं– पुरुष पात्र है अजीत और नारी पात्र है सुधा। सुधा अपनी किशोरावस्था से ही मन-ही-मन अजीत से प्यार करती है। उससे विवाह करना चाहती है परन्तु अजीत को आज़ादी की लड़ाई का नशा चढ़ा है। वह इन्कार कर देता है। अजीत पहले नारी को अवमूल्यन की दृष्टि से देखता है। जब उसकी भाभी उससे कहती है कि सुधा से विवाह कर लोगे तो वह तुम्हारे साथ आज़ादी की लड़ाई में भी क़दम-से-क़दम मिलाकर उतरेगी। "वह हँसते-हँसते चिता पर चढ़ सकती है। छाती पर गोली भी ख़ुशी से झेल लेगी। वह तुम्हारी छाती में दिल भी देगी, भुजाओं में बल भी।" ('पुरुष और नारी', पृ.27)

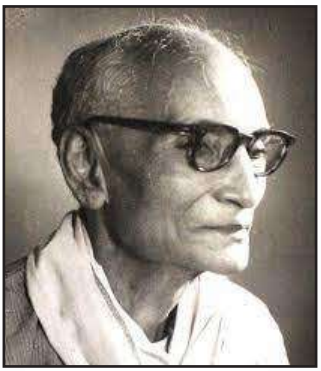
परन्तु जवानी के जोश में जब आज़ादी का जोश मिल जाता है तब अजीत की नज़रों में नारी का अवमूल्यन हो जाता है–

"कहीं चूड़ियों की रुनझुन से किसी की नसों में कस भी आया है? कभी नुपुरों की झनकार से किसी को त्याग की प्रेरणा भी मिली है? मैं तो समझता हूँ, पुरुष के जीवन में जब कामिनी आती है, उसे गिराने ही आती है, कुछ उठाने नहीं। वह नन्दन की हवा तो लाती है, पर तपोवन की शिखा बुझा जाती है।" (वहीं, पृ. 27)

विगत 2-3 दशक से नारी-विमर्श की चर्चा पुरज़ोर है परन्तु आज से आठ दशक पूर्व नारी के सबला रूप की कल्पना यह सिद्ध करती है कि राजा साहब ने उस ज़माने में भी नारी का सही मूल्यांकन किया है, उसकी सत्ता और शक्ति को समझा है। तब न अजीत की भाभी अजीत को 'नारी शक्ति' की परिभाषा बतलाती है–

"सच मानो, तुम्हें अबला के पुरुषार्थ का पता नहीं है। तुमने उसे कामिनी समझ रखा है। यही तुम्हारी भूल है। तुम्हारी चटोरी

मनोवृत्ति उसे कामिनी कहे या मोहिनी, मगर यह काम यह मोह कुछ नारी के रूप में निहित नहीं है। यह तो तुम्हारी दिलफेंक आँख में है, तुम्हारे मनचले दिल में है, तुम्हारा काम उसे कामिनी का नाम देता है, तुम्हारा मोह उसे मोहिनी के रूप में देखता है। तुम्हारी छाती की बेताबियाँ उसकी आँखों में बिजलियाँ पाती हैं। तुम्हारे मन का विकार उसके सहज सौन्दर्य की भोग का आधार बनाता है। तुम्हारी रंगीनी उसके अंग-अंग पर रंग भरती है। तुम्हारी शृंगार-लिप्सा उसे हीरे और मोती में बाँधकर रस चूसती है। ...नारी तो एड़ी से चोटी तक माता है। वह संसार की सेवा के लिए बनी है। आठों पहर तुम्हारे अत्याचार के वार को सर पर सम्भालती हुई तलवार की धार पर चल रही है। सच कहो, कहीं पुरुष से भी त्याग हो पाया है अजीत? त्याग की मूर्ति तो है नारी।" (पृ.28)



राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह
(10 सितम्बर, 1890 - 24 मार्च, 1971)

ग़रीबी जो न कराए। अजीत के इन्कार के बाद सुधा की शादी अधेड़ उम्र के पन्नालाल से हो जाती है– उसकी पहली पत्नी से दो बेटे हैं– 1. महीप और 2. बुन्नू । संयोग से महीप भी स्वतन्त्रता आंदोलन से जुड़ा हुआ है।

सुधा को अजीत का तन न मिला, तो क्या हुआ। मन ही सही, वेश ही सही। सुधा भी खादी की चेरी बन गई - ज़ेवर का जादू न सही, चरख़े का जादू तो लग गया। पहले अजीत की भाभी सुधा के बहाने नारी के गौरवपूर्ण चरित्र की परिभाषा बतलाती है फिर अजीत भी सुधा को मन-मानस में रखकर नारी को देश-प्रेम के कर्त्तव्य समझाता है–

"स्त्री घर की लक्ष्मी ही नहीं, विश्व की शक्ति भी है। उसका धर्म पति की पूजा ही नहीं, पीड़ित की सेवा भी है। उसके कन्धे पर गृहस्थी का ही भार नहीं, देश की आज़ादी का भी भार है, उसका क्षेत्र आज दीवारों से घिरा आँगन ही नहीं, समाज का प्रांगण भी है। उसके सर का अलंकार सुहाग का सिन्दूर ही नहीं, त्याग का मौर भी है। उसकी तलाश रोटी-दाल का इत्मिनान ही नहीं, मानव जाति का कल्याण भी है। उसके नारीत्व का ज़ेवर सतीत्व की लज्जा ही नहीं, जौहर का माद्दा भी है। उसकी ख़ूबसूरती कुछ रूप की माधुरी ही नहीं, दिल की दिलेरी भी है। उसकी शोभा सजावट की चारूता ही नहीं, हृदय की उदारता भी है। उसका हृदय ममता का आघार ही नहीं, तेजस्विता का आधार भी है। उसकी प्रतिभा की दौड़ आँगन की बारीकियों पर ही ख़त्म नहीं, राष्ट्र की उलझनों का अनुशीलन भी है।" (वही पृ.-45)

आख़िरकार सुधा भी गाँधी की आँधी के रंग में रंग गई। उसके पति का पहला बेटा महीप तो पहले से ही उस रंग में रंगा था।

अजीत ने एक आश्रम बनाया है, जिसमें महिला विभाग भी है। अजीत की आंतरिक इच्छा और महीप की सलाह पर अंततोगत्वा सुधा भी आश्रम में चली गई। आश्रम की काया भी पलट गई। आश्रम में सादगी के साथ सफ़ाई भी आ गई। सुधा त्याग की प्रतिमूर्ति बन गई। राजा साहब की जादुई शैली में–

"नारी के हृदय में यह देश की लौ?

उसकी नारी सुलभ लालसा की लौ कब बुझ गई? क्या हृदय के भीतर की तमाम अठखेलियाँ जवानी की गुदगुदियाँ इसी सिन में इस लौ पर परवाने की तरह जल-भुनकर राख हो गई? कोई रस नहीं, कोई हवस नहीं।" (वही पृ.-60)

आज जिस पति और पत्नी के सम्बन्धों पर दर्जनों पुस्तकें लिखी जा रही हैं। नारी स्वाधीनता का आंदोलन हो रहा है। तन और मन का अंतर्द्वन्द्व हो रहा है- उस नारी-विमर्श का चिन्तन और चित्रण आठ दशक पूर्व राजा साहब ने किया था।

सुधा का पति अधेर है। दोनों में न तन का रिश्ता है, न मन का। मात्र चुटकी भर सिंदूर का रिश्ता है। रिश्ता अगर रिसने लगे तो क्या करना चाहिए? राजा साहब का पात्र अजीत कहता है–

"सुधा! अगर विवाह से जीवन पिस रहा है, तो इस विवाह को तलाक दो, तुम्हारी आत्मा सिंघोड़े की डिब्बी (सिंदूर रखने वाली डिब्बी) में पड़ी, तो तुम मरी या ज़िन्दा रही, दोनों बराबर है। यह सिंदूर की लकीर कुछ तुम्हारी ज़िन्दगी के दमामी पट्टे पर ताबेदारी की लाल मुहर नहीं है? ...जिस समाज में प्रेम, विवाह का सहचर नहीं, अनुचर है, वह प्रेम नहीं, प्रेम के रूप में नेम है। हमारे यहाँ तो पत्नी पति की दिलदार नहीं, पति की ताबेदार है। यह ताबेदारी तो प्रेम की मिट्टी नहीं, प्रेम की समाधि है।" (वही पृ. 67)

आश्रम के सात लोग जेल जा रहे हैं। उन लोगों का वंदन-अभिनन्दन हो रहा। उसी समय सुधा के पति पन्नालाल मोटर लेकर आते हैं। सुधा को घर चलने के लिए कहते हैं। सुधा इनकार करती है। झुककर पति के चरण की धूल लेकर प्रणाम करती है। भारतीय पतिव्रता नारी जो ठहरी। उसकी आत्मा में अंतर्द्वन्द्व हो रहा है। वह सोचती है–

"काश! आदमी की छाती भी सड़क की पटरी होती- कठोर, अनाशक्त, बे-लौस। कोई रौंदे, कोई सींचे, उसे पता नहीं। यों ही पदचिह्न उठते, उसी क्षण मिट जाते। काश! धुआँ भी उठता, तो चक्कर काटकर नहीं बैठ जाता, धीरे-धीरे सुलगता नहीं।" (वही, पृ.-79)

अंततः सुधा भी सात महीने के लिए जेल जाती है। आश्रम में तालाबन्दी हो जाती है। फिर वह दिन भी आता है, जब सत्याग्रह सफल होते नज़र आता है। जेल के सभी लोग जेल से छूट जाते हैं। सुधा भी वापस आ जाती है। पता नहीं- क्यों? अजीत का हृदय परिवर्तन होता है। वह गुमसुम बैठा रहता है। भीतर-भीतर उबलता रहता है। आश्रम में होने वाली प्रातःकालीन प्रार्थना में भी नहीं भाग लेता। अजीत कहाँ सुधा के मधुर वचनों के प्रति लालायित रहता था, अब उसके गले के विहुल सुर उसे शर लगते हैं।

आज़ादी के पूर्व उस ज़माने में भी राजा राधिका रमण सिंह के पात्र अजीत को महसूस होता है कि हज़ारों सत्याग्रहियों तथा कार्यकर्ताओं के बलिदान की खाद पर जो पौधे उगे हैं, लहलहा रहे हैं परन्तु देश की स्थिति यथावत् है। अजीत कुछ-कुछ पछता भी रहा है। वह सोचता है- दिल तो बुझ ही गया। देश भी हाथ न आया। इधर अजीत को असंतोष है- उधर सुधा को संतोष–

"मैं चारों ओर से सूनी हूँ, फिर भी सेवा सर पर रखकर दुःख में भी हरी-भरी हूँ। मेरी आँखों के आँसू आँखों के अंजन बन गए हैं। आज उसाँस तो मेरे जीवन की साँस है। मेरी पीड़ा मेरे दर्द की दवा बन गई है। यही वेदना तो आज मेरी कामना है।" (वही, पृ.92)

'पुरुष और नारी' उपन्यास की एक

बड़ी विशेषता है कि इसमें पुरुष उठकर गिरता है और नारी गिरकर उठती है।

पुरुष पात्र अजीत स्वतन्त्रता आंदोलन का सेवक बनकर सुधा के प्रेम को ठुकरा देता है, घर छोड़ देता है, रियासत छोड़ देता है, विवाह नहीं करता, परन्तु अंत में ग्रामीण वेश्या के यहाँ जाने लगता है। शराब भी पीने लगता है। सुधा के लिए भी तरसने और तड़पने लगता है। अपनी जवानी में प्रेम और विवाह से विकर्षित अजीत महसूस करने लगता है कि उस जीवन का क्या मोल है, जिसे किसी नारी के प्रेम ने रंजित-कुसमित सुरीमत नहीं किया। अजीत इतना गिर जाता है कि वह वेश्या को अपनी सोने की चेन दे देता है। फिर सुधा को कहने लगता है–

"जिस मोहिनी की मदिरा को पीकर मेरे मन में एक-एक वृत्ति मुग्ध हो रही है, वह मोहिनी तो तुम हो, जिस कामना की झंकार पर मेरी धमनी के रक्त की एक-एक बूँद घुँघरू की तरह थिरक रही है, वह कामना तो तुम हो।" (वही, पृ.150)

अजीत की वासनायुक्त चाह को ठुकराती हुई सुधा कहती है, "आप मुझे एक दिन ठुकरा कर चल दिए, मैंने तो बुरा नहीं माना। चूँकि आप व्रती थे- देश के लिए अपने त्याग का वरण किया। मेरा हृदय श्रद्धा से भर गया। ....यहाँ मैं आठो पहर आपके लक्ष्य की संगिनी आपके व्रत की सहधर्मिणी हूँ।"

फिर सुधा अब भी प्रेम का विरोध नहीं करती, परन्तु प्रेम को एक उपासना मानती है, वासना नहीं। प्रेम में अगर वासना मिल जाए तो वह विकार है, प्रेम नहीं।

नारी को नरक का द्वार समझने वाला अजीत उस नरक का शिकार बन जाता है।

उपन्यास के अंत में सुधा पुरुष और नारी का परिभाषित रूप वर्णन करती है–

"स्त्री पुरुष के रूप पर नहीं जाती। वह रूप के परे उसके स्वरूप को देखती है। वह दिल की आँखों से प्रेम का जलवा देखती है– चूँकि पलक मूँद कर देखने से जो दीदार मयस्सर है, वह आँखें फाड़कर देखने पर भी नसीब नहीं। वह जानती है कि जो प्रेम रूप में लिपटा रहता है, वह प्रेम नहीं। काम है..।

अंततोगत्वा अजीत शराब पीकर दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है। सुधा दर्द दूर करने वाली मालिश की दवा पी लेती है। अजीत पूछता है- बोलो तुमने ज़हर क्यों पी लिया। सुधा जवाब देती है- चूँकि मैं नारी हूँ। जान रहते तो...। आवाज़ रुक जाती है और सुधा का निधन हो जाता है।

सुधा "चूँकि मैं नारी हूँ" कहकर नारी के त्याग का परिचय देती है। सुधा ने अपने पति को तन समर्पित कर दिया परन्तु मन तो अजीत को समर्पित कर चुकी थी। अजीत के साथ उसका आत्मीय सम्बन्ध था। जब तन और मन दोनों पर कुठाराघात हो जाए-न माया मिले, न राम मिले तो जीने का क्या महत्व। यह त्याग एक नारी ही कर सकती है- पुरुष नहीं। इसीलिए सुधा के जीवन का अन्तिम वाक्य था, "चूँकि मैं नारी हूँ।"

वास्तव में नारी एक पहेली ही है न? पुरुष पता नहीं, उसे कब पहचान पाएगा कि वह आग है या बर्फ़? शोला है या शबनम? पीयूष है या विष?...

बस जाकी रही भावना जिन जैसी-
नारी सूरत देखी तिन तैसी।

स्त्री-विमर्श पर आज से आठ दशक पूर्व भी 'पुरुष और नारी' उपन्यास लिखकर राजा राधिका रमण चोटी के उपन्यासकार बन चुके हैं। ❑



बचपन में हम ख़ुद भी झाऐ लेकर बालियाँ बीनने अपने खेत पर जाते। उन बालियों को घर के आँगन में मोंगरी से कूट, सूपे से फटक कर बनिए को बेचने जाने को जब उद्यत होते, तब वह अनाज हमसे लेकर दीदी हमें एक-दो आने थमा देतीं। इस तरह कटाई के चलते कई दिन हमें मीठे बर्फ़ ख़रीदकर चुसकने का सुखकर अवसर मिलता।

अमुए की छाँव

हार्वेस्टर के चोंगे से झरने-सा झर रहा है गेहूँ का एक-एक दाना, जैसे पानी की बूँदें बरस रही हैं! चोंगे के नीचे बिछी हैं लम्बी-चौड़ी तिरपालें। गेहूँ के सूखे कटे डँठलों को बके और फावड़े से फटाफट काट-छाँटकर धराशयी कर दिया था मजूरों ने। उन्हीं डँठलों की सेज पर असरी-पसरी तिरपालों पर गेहूँ का ढेर लगाकर हार्वेस्टर खेत की मेड़ों पर चढ़-उतरकर अगले किसान के खेत पर जा पहुँचा है। दूर-दूर तक कहीं कोई खलिहान नहीं नज़र आता। डँठलों से भरे खेतों का लम्बा सिलसिला है जिसे 'नरवाई' कहते हैं। कुछ दिनों के बाद इस 'नरवाई' को जलाना पड़ता है। वायु-प्रदूषण के अनेकानेक कारकों में अब यह भी गिना-गिनाया जाने लगा है और इस पर राजनीति भी ख़ूब होती है।

दूर एक आम के पेड़ की छाँव तले आस-पास के खेत-काश्तकारों का जमावड़ा है। कोई बीड़ी धुँधका रहा, कोई चूना-जर्दा या गुटखा चुभला रहा है। बीड़ी के कसैले धुएँ के बगूले सोख रहे हैं, आम की टहनियों के कँपकँपाते पत्ते। तम्बाकू, गुटखे की पीकों से रच गई है आम की छाँव तले की भूमि। दरअसल वे सब बेसब्र इंतज़ार की घड़ियाँ काट रहे हैं। उनका हार्वेस्टरवाला कब आएगा कटाई-गहाई करने? इलाक़े में इस बरस तीन हार्वेस्टर आए हैं। पिछले साल तक दो ही आते थे।

इधर कुछ बरसों से खेतिहरों को असमय बेमौसम



देवेन्द्र कुमार पाठक
ई-मेल : devendrakpathak.dp@gmail.com

बारिश की भारी आशंका और दुश्चिन्ता घेरे रहती है। बाप-दादाओं के ज़माने-सा ऋतुचक्र बाक़ायदा कहाँ रहता है अब! कुछ बरसों से पम्प से खेतों में पानी भरकर धान रोपनी पड़ती है। हमारे बचपन के दिनों में क़ुदरती बारिश से ही धान की फ़सल लहलहाती थी। भला ख़रीफ़ की फ़सलों को भी कभी कोई सींचता था! चौमासे की बारिश से सियारी की धान, मकई, ज्वारी, कोदो-कुटकी, उड़द आदि फ़सलें पकती थीं। उन्हारी के गेहूँ, चना, मसूर, जवा, अरहर आदि की सिंचाई के लिए पूस-माघ की 'मघावट' वर्षा ही पर्याप्त होती थी। अब तो उन्हारी-सियारी सब को सिंचाई करने की ज़रूरत, बाध्यता है। इसीलिए तो खेती अब घाटे का धंधा है। जो धन देवे, वह 'धनदा'! जिससे धन की आमद न हो, वह धंधा ही क्या? चार माह घर के चार जन की मेहनत, बीज, खाद, दवाई, जुताई, सिंचाई, रखवाली, कटाई-गहाई की हर बरस बढ़ती भारी लागत, उस पर खेतिहर की उम्मीदों पर पानी फेर देती हैं ऐसी, बेमौसम आकस्मिक हो जाती वर्षा, ओलाबारी, पाला, ।... मेरी उम्र से दोगुना है यह आम का पेड़, इस घड़ी मैं जिसकी सुखकर छहियाँ में हूँ। एक सदी से अधिक ही हुआ होगा, जब दादी की माँ ने इस आम के पेड़ को अपना पुत्र मान इसका बरुआ (उपनयन) किया था। उनका कोई बेटा जो नहीं था। दो बेटियाँ थीं। एक मेरी दादी, दूसरी उनसे बड़ी, जो घर के सामने वाले जन्माँध मिसिर को ब्याह दी गईं थीं, ग़रीबी के कारण। मेरे दद्दा की इस मौसी को भी दो बेटियाँ ही जन्मीं। यह आम मेरे दद्दा का मामा है। इसकी सघन, शीतल छाँव में बिछी खटिया पर बैठा हूँ। अब अपने परिवार में शेष बड़ा, बुज़ुर्ग मैं। दादी-दद्दा, नत्थू भाई, उनका पुत्र, चमेला-बेला फूफू, फूफा मुझसे वयोधिक कोई नहीं रहे। गए साल मेरी जीवन सहयात्री विंध्या भी नहीं रही।

इधर गेहूँ के डँठलों से भरे खेतों का लम्बा सिलसिला दूर तक देख रहा हूँ। उधर सौ पग दूर गेहूँ से भरी नब्बे बोरियाँ तिरपालों पर बैठी हैं मुँह बाए। अब गेहूँ ख़रीद कर नगदी नोट गिन देने की हैसियतवाले किसी व्यापारी का इंतज़ार कर रहा है मेरा भतीजा। एम एस पी से डेढ़-दो सौ रुपये प्रति क्विंटल कम रेट पर खेतिहर अपनी उपज बेचने को विवश हैं। तत्काल नगद भुगतान तो सरकारी खरीद केन्द्र पर होगा नहीं। ...किसान के बीसों ख़र्चे, उधारियाँ चुकानी होती हैं। ब्याह-बारात, विदाई-व्यवहार, नेग-भेंट करने का लगनहा महीना है बैसाख। नवरात्रि से तिलक, ब्याह होने लगे, नेवते आने-जाने लगे हैं। इन सब ज़रूरी कामों के निबटान, कर्त्तव्यों के निभाव के लिए भी तो नगद रुपया चाहिए। इसी में खेतिहरों को सुभीता तथा निबाह है। पिछली सदी के उत्तरार्द्ध के दशकों के कई-कितने वर्षों के बैसाख-जेठ महीनों के खेत-खलिहानों के परिदृश्य मेरी स्मृतियों में साकार हो उठे।... इसी आम के पेड़ की छाँव में हमारा बड़ा खलिहान बनता था। फावड़े से अच्छी तरह छील, गाढ़ा गोबर घोलकर उससे दो-तीन मर्तबा खलिहान की लिपाई होती थी। चारों तरफ़ से धवइन-करौंदे के झाड़-झखोरों की मज़बूत बाड़ी रूँधी-बाँधी जाती। बड़ा-सा फाटक बनता, जिससे होकर आसानी से बैलगाड़ी आ-जा सकती थी।

कभी मज़दूरी, तो कभी कूता-ठेके

पर उन्हारी की फ़सलें कटाई जातीं। बोझे बाँधने को बकौड़ों का जुगाड़ बिठाया जाता। हलवाहे को जंगल भेजकर 'महरोई' के बंकौड़े मँगवा लिए जाते, (इसी 'महरोई' पेड़ के चौड़े पंखनुमा दोनों तरफ़ खुलते पत्तों से वह 'ढाबा बनाया जाता था, जो मकाई, ज्वारी के ऊँचे पौधों की बाड़ियों में रखवाली, रात बसेरा करने, गोफने से सुग्गे उड़ाने के लिए उपयोगी होता था। चार या छह ऊँची बल्लियाँ ज़मीन पर गहरे गाड़कर, चौरस चार डंडों पर बाँस, निगुड़ी या सहरुए की टटिया बाँधते। खेत-फ़सल की तकाई, बसाई के तब यही मैड़ा-मचान कारगर साधन थे। बाँस की अर्द्ध वृत्ताकार कमटियों पर ढाबा टाँगते थे। यह बारिश और घाम से बचने को छाया देता था। इस ढाबे को गढ़ने-सिरजने के लिए ज़मीन पर गोल घेरे की परिधि पर बाँस, सेहरुआ या धवइन झाड़ियों की कमटियाँ अर्द्ध वृत्ताकार झुकाई और परिधि पर गाड़ी जातीं। फिर उन पर महरोई के पत्तों को सघन बिछाकर खोंसते जाते। इस तरह मइड़ा या मचान के लिए छाया यानी ढाबा तैयार किया जाता। यह मचान दोनों फ़सलों में रात-दिन रखवाली तकाई और रैन-बसेरे के काम आता था।

कुछ किसान बोझे बाँधने को ज़मीन में गहरे गड़ी-दूर तक फैली छेवले (टेसू) के पेड़ की मूसलाकर लम्बी-मोटी जड़ें काट-खोदकर कई दिन पहले जंगल से घर ले आते। छेवले की जड़ के एक सिरे को कूटकर उससे गेहूँ, चना, अलसी, मसूर आदि फ़सलों के बोझे बाँधने को उधेड़े जाते।

उन दिनों लौकी या घियार के 'तुम्बे' में पीने को ठंडा पानी भरकर रखना कोई नहीं भूलता, तुम्बे में भरा पानी बड़ी देर तक ठंडा रहता है। भारतीय लोक संस्कृति में की जाती काश्तकारी की ये विरासतें अब लुप्तप्राय हैं। तुंबा, खमरी, सेहरी, दुफन, कुरैल, गड़ाइन, हरसा, नास, मोंगरा, फाल, पैनारी, जोतार, डेंगुर, हल, बक्खर, हँसिया, गैंती, कुदाली, खुरपी, नाड़ी-चाँड़ा, ढाबा, भूसा, पयार, गठुरी, मइड़ा, लोकगीत, कंउड़े-क़िस्से, महुआ-लाटा, तेली, मठा, होला-बाली, झरबेरी-मकोय, करौंदा, कैथा, इमली, बेल, तेंदू, चार, भेड़ारी, मनहर आदि... ये सब अब स्मृति- संस्मरणों के लिए ही शेष हैं?

कमर पर हँसिया खोंसे टोले से आदिवासी बनिहार मजूर-मजूरिनें गेहूँ, काटने निकलतीं। वे टोलियों में मेड़ों पर पाँत बनाए आते। अक्सर वे 'टप्पा', 'राई' 'करमा' गाते चलते।

बनिहार हर आयु, वर्ग के होते थे। दस-बारह से लेकर साठ-पैंसठ, बरस के भी।...कुछ स्त्रियों की कोंख में आने वाले कल के श्रमिक का सिरजन चल रहा होता। माह-दो-माह के गर्भस्थ भ्रूण से लेकर आठ-नौ माह तक। कई बार खेत काटते, धान रोपते, मिट्टी के झौये, फ़सल के बोझे उठाते, ढोते, धरते, आते-जाते खेत-मेड़ कहीं पर भी आकस्मिक प्रसव को बाध्य हो जातीं, ये श्रमजीवाएँ! कोई प्रसव के हफ़्ता पूरा होने से पहले ही चौथे-पाँचवे दिन झौए में अपने दुधमुँहे को चीथड़ों में लिपटाए-लिटाए, सर पर धरकर मजूरी के लिए निकल पड़तीं। कुछ का शिशु महीनों पहले जन्मा होता। कोई महतारी बच्चे को कमर से टिकाए, कोई छाती से छुपकाए रास्तेभर स्तनपान कराती

चलती। कोई काँधे पर बिठाए होती। कोई तीन-चार बरस का नन्हा नंगे पाँव बाप की अँगुली पकड़े रोता-नाक बहाता जाता। कोई बच्चा सूखी रोटी कुतरता चलता।

मर्द-मजूर काँवड़-सूजे काँधे पर धरे होते। फ़सल के बोझों की ढुलाई में एक मर्द चार-छह बोझे की काँवड़ कँधे पर लचकाता, पसीने से तर-ब-तर दो-तीन मील दूर के खेतों से खलिहान तक 'लांक' ढोकर लाता (फ़सल कटाई के उपरांत बोझों के ढेर को महाकोशल के ग्राम्याँचलों में बघेली की उपबोली पचेली में 'लाँक' कहते हैं)... मसूर, चना, अलसी, बटरी, अरहर की कटाई-गहाई अक्सर होली के आसपास ही निबट जाती थी।

उन्हारी (रबी) की फ़सलों की कटाई के दौरान अनाज के पके-सूखे बिरवों के घंटियों, बालियों वाले डँठल टूटकर खेत में गिरते जाते। फ़सल काटती मजूरिनें मुट्ठी-मुट्ठीभर बिरवों को तरतीब से अपनी-अपनी पाँत पर रखतीं, मुट्ठीभर कर बिरवों को सख़्ती से पकड़-जकड़ हँसिए से काटती, आगे बढ़ती जातीं। फ़सल कटाई की इस प्रक्रिया को 'माँग भरना' तथा पाँत-पाँत पर कटे हुए बिरवों के रखे ढेरों को 'डबिया' कहा जाता था। एक पाँत के बिरवों को काटने के लिए एक से लेकर दस, पन्द्रह, बीस मजूर-मजूरिनें मज़दूरी पर लगाए जाते। बड़ी जोतवाले बीसों एकड़ बड़ी जोत के भूमि के मालिक तो पूरे कोल टोले के मर्द-औरतों को चार-पाँच दिनों में कटाई निबटाने को बुलवा लेते। मजूरी पर या कूता करके ठेके पर फ़सल कटाई करवा लेते। मँझोले किसान कम संख्या में ही मज़दूर लगाते। बहुत ही छोटे या सीमांत कृषकों के अपने घर-परिवार के मुखिया, किशोरवय या युवा, अधेड़, प्रौढ़ बेटे-बेटियाँ, बहुएँ सभी मिलकर खेत की फ़सल काटकर मज़दूरी बचाने की पूरी कोशिश करते थे। घर के सदस्य ही मिल-जुल कर कटी फ़सल की 'डबियाँ' डाल लेते, (कटी फ़सल के बिरवों के ढेरों को एकत्र कर बोझे की शक्ल में बँकौड़े से बाँधने की प्रक्रिया) सर पर बोझे रख ढो-ढोकर पहले से तैयार किए हुए गोबर से लिपे खलिहान में बातरतीब लाँक जमाकर रखा जाता था। बड़े जोत वाले कृषकों के ये तमाम काम मज़दूर स्त्री- पुरुष करते।

पिछली सदी के अन्त तक गँवई गाँवों के खेत-मजूरों को प्रतिदिन तयशुदा मज़दूरी के अलावा हर साँझ 'मुट्ठी' दी जाती। एक मुट्ठी में काटकर रखी बिरवों की 'तीन-चार डबियाँ' होती। जिसे मज़दूर ख़ुद चुनकर रखते। कई दफ़े किसान और मज़दूरों के बीच इस मुट्ठी रखने को लेकर विवाद हो जाते। कुछ मज़दूर स्त्रियाँ जबरन एकाध 'डबिया' रख लेतीं। किसान खीजता-खिसियाता, बड़बड़ाता रहता, मजूरिनें अपनी-अपनी मुट्ठी लेकर चनचनाती-हँसती, आपस में बतियाती घर की गैल पकड़तीं। फ़सल कटाई की हर पाँत पर गिरी बालियाँ बीनने को मज़दूरों के कम उम्र बच्चे कमर पर झौए टिकाए जब खेत में आ घुसते तब किसान उन्हें हुड़कता-रोकता, "खेत की पूरी फ़सल कटाई के बाद ही बालियाँ बीनने आना। अभी भागो।" कुछ बच्चे जबरन बालियाँ बीनते रहते। खेत मालिक जब उन्हें डपट-हड़का भागने को बाध्य कर देता, तब हँसिया रोककर बच्चों

की मज़दूरिन महतारी भी वाग्युद्ध पर उतारू हो किसान की हृदयहीनता पर लानतें भेजती। यह सारे क्रिया-कलाप बिला नाग़ा फ़सल कटाई के दौरान चलते रहते।

बचपन में हम ख़ुद भी झौए लेकर बालियाँ बीनने अपने खेत पर जाते। उन बालियों को घर के आँगन में मोंगरी से कूट, सूपे से फटक कर बनिए को बेचने जाने को जब उद्यत होते, तब वह अनाज हमसे लेकर दीदी हमें एक-दो आने थमा देतीं। इस तरह कटाई के चलते कई दिन हमें मीठे बर्फ़ ख़रीदकर चुसकने का सुखकर अवसर मिलता।

हमारे टोले के रामप्रसाद काका और मझौली टोले के जगदीश भाई हर साल गर्मी में शहर से बर्फ़ की बड़ी-सी पेटी बस से उतारते, फिर उसे कन्धे पर ढोकर लाते और तिगड्डे-चौगड्डे, गली-खोरियों में फेरी 'रेरी' (बार-बार पुकारना) लगाते फिरते थे। दस, बीस, चवन्नी वाली क़ीमत की खूँटियों पर खुसी लाल, पीली, गुलाबी संतरे और दूध के स्वाद वाली खूब ठण्डी, लम्बी-चपटी बट्टियाँ चटख़ारे ले-लेकर चूसते-चुभलाते अनुपम परमानन्द पाते।

मंगलवार को हमारे गाँव में साप्ताहिक बाज़ार भरता। आस-पास की आठ-दस गँवई-देहातों के लोग बाज़ार करने आते। गर्मियों में हमारे गाँव के दुःखी लाल बनिया काका छीलनेवाली बर्फ़ की सिल्ली कई परत बोरे-बुरादे में लपेटकर रखते। बर्फ़ की सिल्ली को वह रंदे से छीलकर छेवले के पत्तों के दौने में रख फिर उस पर हरे, पीले, गुलाबी, लाल रंग के मीठे घोल बोतलों से छिड़ककर बच्चों को बेचते । बड़े-सयाने भी इसका स्वाद लेने की ललक का संवरण न कर पाते थे।

..... अपनी बरसों पुरानी स्मृतियों में गहरे डूबा हुआ मैं तब चौंक गया, जब एक 'कोयलीपाद' (आम का एक अंश-भाग किसी प्राकृतिक रासायनिक प्रभाव से काला पड़ जाता है। आम का वह भाग कच्चे-गदरे आम से भी ज़्यादा, पके आम सा स्वादिष्ट लगता है।

आम चारपाई के सिरहाने टप से गिरा। बरसों पहले की भाँति बालोचित विस्मय से उस आम को उठाकर देखा, सजल हो आँखें स्वयंमेव मुँद गईं। देखता हूँ बरसों पीछे स्मृति- पटल पर... एक 'कोयलीपाद' आम को लपकने के लिए दौड़ लगाता बच्चा, हमजोलियों के साथ। लगभग छह दशक पहले, बीसवीं सदी के सातवें दशक के मेरे छुटपन में इसी आम की छाँव में फ़्लैशबैक में किसी फ़िल्म की रील-सा सरक आया है।

गमछे से पोंछकर आम को बूढ़े घिस चुके दाँतों से काट लिया मैंने। बड़े चाव-ललक से दो फाँक। खटमिट्ठे आम का बरसों पुराना स्वाद जीभ से होकर मन-अन्तस में उतर-भर आत्मा में घुलने लगा है। चटख़ारे लेते हुए मैं वही दसवर्षीय बच्चा बन गया। इस आम की कोई ऐसी डाल नहीं, जिस पर चढ़ने और आम तोड़ने का कौशल मुझे न आता रहा हो।..... अब वह बाल सुलभ कौशल कहाँ, जब बूढ़ी, जर्जर, आधे दर्जन रोगों का चलित संग्रहालय बन चुकी मेरी इस काया का बोझ एक सौ दस किलोग्राम हो रहा है...

उन दिनों जब आम के टिकोरों से डालियों की टहनियाँ लद-गूँथ जाती थीं,

तब हम बाल-गोपालों की टोलियाँ आम के पेड़ों की छाँव में पूरी दोपहरी हुमदरें मचातीं। आम के टिकोरे को दाँतों से दबाकर हम उसे बीच से काटते। उसकी साबुत गुठली निकाल लेते। फिर उसे थूक से गीला कर अँगूठे, तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों के बीच दबाकर रखते। अपने साथी के बियाह का ज्योतिष बताने से पहले साथी से पूछते। "तोंहार बियाह कहाँ होइ, बताई?"

"कहाँ होइ भला बतावा तौ?"

"देखा, ई गुठली हम ऊपरै का हुल्लाउब। जौन कोंधी ई जाई के गिरी, उहै कोंधी के गाँवे माँहीं तोंहार बियाह होई।" थूक सनी गुठली अँगुलियों को दबाते ही सटककर जिस दिशा में गिरती, उस दिशा के किसी गाँव का नाम बता देते कि तेरा व्याह फ़लाँ गाँव में होगा। उन दिनों गन के खटीक गाँव आकर आम के पेड़ों पर टिकोरे उन्हें खरीदते नहीं थे, न ही उनके रखवाले अमराई में मड़ैया बनाकर वहाँ रखवाली ही करते थे...। बाज़ारू पूछ-परख और धन लाभ के लालच से दूर, मुक्त थीं मेरे गाँव की अमराइयाँ। अमराइयों के वे सैकड़ों आम, कैथे, बेल, करौंदे, तेंदू, आँवले आदि के पेड़।

अचानक कुछ आहट पाकर मेरी निगाह घूमी। आँखों ने जो देखा, वह मन को बेहद सुकूनदेह लगा। तीन मजूरिनें खेत के परले सिरे से बालियाँ बीनती इसी ओर आती-सी जान पड़ी हैं। एकबारगी खेत जीवन्त हो गया है।

खेत से कुछ उम्मीद लगाए वे बालियाँ बीनने आई होंगी...! निगाहें घुमाकर फिर उधर देखता हूँ। तिरपालों पर जहाँ बोरियाँ रखी हैं, अब वहाँ पर गेहूँ ख़रीदी करने व्यापारी आ गया है। उसने पचास किलो वाली एक बोरी से एक-डेढ़ किलो गेहूँ हर बोरी में और भरने को कहा। उसके साथ आया मज़दूर तत्परता से दूसरी बोरियों में गेहूँ भरने लगा। दो बोरियों ख़ाली हो गईं। उनका गेहूँ अठासी बोरियों ने कण्ठ तक भर लिया है। लो, बिना कांटे के तौल हो गई। वह चवालीस क्विंटल गेहूँ उन्नीस सौ रुपये प्रति क्विंटल के रेट से नगद रूपयों में ख़रीदना चाहता है। भतीजे ने इस रेट पर उससे सौदा नामंज़ूर कर दिया और उन्नीस सौ पचास रुपये क्विंटल पर अड़ गया है। आख़िरकार उन्नीस सौ बीस रुपये क्विंटल पर सौदा पक्का हुआ। फटाफट बोरियों के खुले मुँह सिल दिए गए। तभी मेड़ों को चढ़ता-उतरता ट्रेक्टर वहाँ आता दिखा। यह उसी बनिए-व्यापारी का ट्रेक्टर है।

इधर बालियाँ बीनती वे औरतें, कुछ दूर पर मेरे सामने पहुँच कमर सीधी करतीं हैं। अब वे आँखों के ऊपर, माथे पर हथेली धर मेरी ओर देखती हैं। शायद मुझे चीह्नने-पहचानने की पूरी कोशिश कर रही हैं।

उधर ट्रेक्टर पर बोरियाँ लादकर ड्राइवर ने उसे स्टार्ट किया और अगले खेत की ओर चल पड़ा है। एमएसपी से काफ़ी कम कीमत पर नगदी भुगतान पर भतीजे ने गेहूँ बेच दिया है। वह अब मुझसे मुख़ातिब है, "बड़े पापा देख लया न, ई हय पूँजी का खेल! अबहिन के अबहिन हज़ारन रूपिया का नफ़ा पीट लिहिस बनिया। चार खलिहान रोज़ई अइसन पीट लेउत हय हमारे जइसन चार-छह किसानन से।" मैं अवाक सुन रहा हूँ। पूँजीवादी बाज़ार के दुष्चक्र और खेतिहर के शोषण पर पढ़े लेखों को याद कर एक

निःश्वांस छोड़ उदास हो जाता हूँ।

इक्कीसवीं सदी के भारतीय बाज़ारों की नई नीति-रीति की गोह। आटा, मैदा, मक्का, चना, मटर आदि के महंगे उत्पादों के लज़ीज़ स्वाद से लोगों की जेबें काटी जा रही हैं। यहाँ बहुसंख्यक आबादी कुपोषण की शिकार है, वहाँ सर्व सुविधा संसाधन सम्पन्न, खाते-पीते उच्चवर्ग, मध्यवर्ग का मोटापा बढ़ रहा है। इलाज महँगा है, दवाइयों की क़ीमतें आसमान छू रही हैं।

भतीजे का सहपाठी ग्रेजुएट बल्लू केवट, जो गाँव में ही रहकर मेशन मिस्त्री का काम करता है। वह इन दिनों बेकार होने के कारण हमारे घर आ जाता है। अब मनरेगा में भी माह-डेढ़ माह ही काम मिल पाता है! बल्लू हमारे छोटे-मोटे घर-बाहर के कामों में लगा रहता है। अभी घर से वह थर्मस में आम का पन्ना लेकर आया है।... आर्टिफ़िशियल कप-गिलास, दौने-पत्तल की भरपूर दख़लंदाज़ी अब गँवई सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन में पूरी तरह से हो चुकी है। गाँव के कुम्हारों के गढ़े-सिरजे कुल्हड़-सकोरों में चाय कोई नहीं पीता अब। कुम्हारों ही नहीं, लोहार, तेली, बढ़ई के परम्परागत कौशल की पूछ-परख निरन्तर घट रही है। उनकी नई पीढ़ी शहरों की राह पकड़ शहरों-क़स्बों में दिहाड़ी पर पेट पाल रही है...

अब भोजन-परसादी-भोग, ब्याह-बारातों, पूजा, कथा-भागवत के भंडारे में हलवाइयों को सौंप दिए जाते हैं। किसी की मृत्यु होने पर तेरहवीं-बरसी पर भी हलवाई लगाया जाता है। विवाह पर अब बनरा, भाँवर के लोकगीत इक्का-दुक्का ही सुनाई दे जाते हैं। सारी ज़िम्मेदारियाँ फ़िल्मी गानों ने सम्भाल ली है। विवाह में वरमाला, संगीत-नृत्य, आर्केस्ट्रा के विशेष, ख़र्चीले आयोजन गाँवों में भी होने लगे हैं। हैसियत के हिसाब से लोग ख़र्चने में पाँव पीछे नहीं देते। 'क़र्ज़ करके घी खाने का' चार्वाक का कथन अब चरितार्थ होने लगा है।

मुझे आम का खटमिट्ठा, चिरपर पन्ना देकर बल्लू भतीजे के साथ सुबह से जुटे मज़दूरों और भतीजे को पन्ना पिलाने के बाद अब ख़ुद भी पन्ना पी रहा है।

बालियाँ बीनती वे मजूरिनें अब आम की छाँव तले मेड़ पर दूर तक फैली-पसरी मोटी जड़ों पर कराहती, पसीना पोंछती सुस्ताने बैठ गई हैं।

"बीन लिह्या बाली हो?" मेरे सवाल पर उन तीनों ने पहले परस्पर देखा, फिर सकुचाकर अपने खुले माथे पर घूँघट खींच लिया है। फिर एकबारगी वे तीनों हँसकर आपस में बतियाने लगीं, "ओ दाई री, चीह्नया? ई तौ मास्टर दादू हँई!... ओ रे मास्टर दादू, तू तौ अक्कौ नाहीं चिन्हाते हया। हओ, तू भला अव्वल बोल दिह्या, नाहीं को! तोंहार बोली- कंठ तौ अक्को नाहीं बदला। डील-डौल तौ... ओ रे दादू! ई कइसन अकहाव थोथाय गए हया तू मास्टर दादू?"

"अब स्कूल कै चाकरी से छुट्टी पायेन, तो घरै बइठे-बइठे थोथाबै न करब काकी।" मैंने विहँसकर कहा। हाँ, दो औरतों को तो मैंने पहचान लिया है, जो आपस में धीरे-धीरे बतिया रही हैं। यह मुझसे बतिया रही गाँव के रिश्ते से मेरी बिजौरिहाई काकी है और वह दूसरी ठगुआ टोले के चन्दू भाई की बिटिया है, जिसका नाम इस घड़ी नहीं

याद आ रहा। वह मेरी भतीजी लगती है। चन्दू भाई दिवाली पर नाचे-गाए जाते कोल आदिवासियों के लोकनृत्य-गान 'करमा' के मादल वादक हैं। दशकों पहले जब युवा था मैं, हर साल गाँव आने पर दीवाली में उनके साथ 'करमा' गाया करता था। रजनिया फूफू के साथ बैठकर मैंने करमा की धुनें सीखीं। नए तौर-तेवर के 'करमा' जनगीत मैंने लिखे थे।

चन्दू भाई की बिटिया ठगुआ टोले से है। इस स्कूल टोले में ब्याह जाने कारण मेरा उससे काकाससुर-बहू का रिश्ता बनता है। उसका पति रम्मू मुझे 'कक्कू' कहता था। वह उस रिश्ते की मरजाद में अपना सर ढक चुकी है। याद आ गया, इसका नाम 'पतिया'। अब मैंने काहे पतिया कोऊ काका का मूड़ ओढ़त हय?" तीसरी स्त्री को न पहचान पाने के चलते मैंने काकी से पूछ लिया, "काकी, ई कवन आय नई-नई दुलहिन?" बिजौरिहाई काकी ने स्नेहिल अपनापे से हुलसकर हँसते हुए कहा, "हमरे देवरौत कै दूसर बहू आय ई। ऊ जौन रही ना पहिलवाली। नाहीं टिकी, तौ पार के साल देवरौत" घर बैठाई करके लइ आवा हय। ई अपना के ननिहालै तेंदुआ गँवई कै सुवासिन आय मास्टर दादू।" हँसकर मैंने कहा, "हओ। तौ इहौ हमार बहिनी-भतीजिन लागत होई ना काकी!" कुछ हैरानी से पूछा, "काकी, आज तौ हमार ख्यात कटा हय। टोला के अउर बाली बिनैया कहाँ हेराय गे? पहिले तौ पूर टोला उमड़ि परत रहा बाली बीनें के लाने।"

"दादू के बातें! अब कहाँ कवनो हिरकत हय। सरकारी राशन जौ फोकट का मिलि जावत हय। अउ अब बीड़ी पत्ता टूटें लाग हय न मास्टर! आधा से जादा मनई तौ बीड़ी पत्ता तोरै जात हय।" काकी ने बताया। मन हुआ कि काकी से पूछूँ, क्या अब भी कहीं दूर-पास जंगल बचे हैं, जहाँ तेंदू की झाड़ियाँ इन दिनों हरियाती मिलती होंगी। पूछा नहीं। दूर तक निगाहें दौड़ाईं, देखा, पश्चिम में सिर मुड़ाए खल्वाट खड़ी हैं भीतरीगढ़ की पहाड़ियाँ। इक्का-दुक्का कोई हरियर रूख दीखता है।

इन्हीं पहाड़ियों के दक्षिण-पश्चिम सिरहाने पर इस अविभाजित महादेश भारत का केन्द्रबिन्दु 'मनोहरग्राम करौंदी' है। जहाँ से होकर कर्क रेखा गुज़रती है।...."इँ बालिन पर गोहूँ के बिरवा काहे बाँधि के धरे हया?"

सामने रखे उन बड़े झौओं की ओर देख मैंने पूछा। तभी वहाँ भतीजा आया। उसने बताया, "बड़दा, अब तो अस्सी फ़ीसदी अनाज ही किसान को मिलता है। बड़ा नुकसान होता है हार्वेस्टर से कटाने-गहाने पर। खेत के ओने-कोने के और गेहूँ के छोटे बिरवे कटाई से छूट जाते हैं। बालियाँ बीनते समय इन बिरवों को भी ये उखाड़- बीन कर बाँध-सहेज लेती हैं। उन्हीं को बालियों के ऊपर रखे हैं ये। काहे दाईं, ठीक कह्यो के नाहीं।"

"हओ बेटवा, ठीकै तौ कह्या। .... अब चलबै मास्टर दादू! दुफ़रिया पलट गय। अबै नहायेन धोएन नाहीं।" कहती हुई काकी काँखकर उठी, काकी के पीछे वे दोनों भी।

झौये सिर पर धरे अब वे लकलकाते घाम में मेड़ से उतर खेत में डँठलों के बीच बनी उस लीक पर चलने लगीं, जो हार्वेस्टर और ट्रेक्टर की आवाजाही से बन गई है। ❑



हमारी गायन शैली अन्य घरानों से बहुत अलग है। हम गौहर-खंडार शैली को अपनाए हैं। वे 'री त न न तोम नोम...'करते हैं। हम 'ओम, हरि ओम अनंत हरि ओम' (गाकर सुनाते हैं) से आलाप शुरू होता है। इसके बाद नोम-तोम त न री..यही सब। मीड़ गौहर बानी का काम है और गमक खंडार बानी (गाकर सुनाते हैं)। इन दोनों को हमारे पूर्वज गाते थे।

अलग गायन शैली

*(यत्र-तत्र-अन्यत्र स्तम्भ में सोशल मीडिया डिजिटल मीडिया से सामग्री साभार प्रकाशित की जाती है। इस अंक में सुप्रसिद्ध ध्रुपद गायक **पण्डित राम कुमार मल्लिक** से **अरविंद दास** की बातचीत)*

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद संगीत के लिए बिहार के दरभंगा घराने की चर्चा होती रही है- यह घराना दरभंगा राज की छत्रछाया में 18वीं सदी से फलता-फूलता रहा। पर राज के विघटन के बाद संरक्षण के अभाव में यह घराना दरभंगा से निकल कर इलाहाबाद, वृंदावन, दिल्ली आदि जगहों पर फैलता गया।

ध्रुपद गायकी की चार शैलियाँ-गौहर, डागर, खंडार और नौहर में दरभंगा गायकी गौहर शैली को अपनाए हुए है। इसमें आलाप चार चरणों में पूरा होता है और ज़ोर लयकारी पर होता है। ध्रुपद के साथ-साथ इस घराने में ख़्याल और ठुमरी के गायक और पखावज के भी चर्चित कलाकार हुए हैं। साथ ही जिस तरह कबीर के पदों के लिए कुमार गंधर्व और मीरा के पदों के लिए किशोरी अमोनकर विख्यात हैं, उसी तरह से दरभंगा घराने के गायक विद्यापति के पदों को गाते रहे हैं।

ध्रुपद के सिरमौर राम चतुर मल्लिक (पद्मश्री) के बारे में बड़े-बड़े संगीत साधक आज भी आदर से बात करते हैं। उनके गायन की कई रिकॉर्डिंग यू-ट्यूब पर उपलब्ध



अरविंद दास
ई-मेल : arvinddas.blogspot.com

है। संगीत समीक्षक गजेन्द्र नारायण सिंह ने उनके बारे में लिखा है, "रामचतुर दरअसल गानचतुर थे। गायकी की हर विधा पर उनकी ज़बरदस्त पकड़ थी।" रामचतुर मल्लिक के चचेरे भाई विदुर मल्लिक 80 के दशक में वृदांवन चले गए और वहाँ पर उन्होंने ध्रुपद एकेडमी की स्थापना की। वर्ष 2019 के लिए इस घराने के चर्चित गायक और राम चतुर मल्लिक के शिष्य अभय नारायण मल्लिक (1937-2023) को राष्ट्रीय कालिदास सम्मान (मध्य प्रदेश सरकार) दिया गया। वे इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, छत्तीसगढ़ से लम्बे समय तक शिक्षक के रूप में जुड़े रहे और अनेक शिष्यों को प्रशिक्षित किया। इसी घराने के इलाहाबाद में प्रेम कुमार मल्लिक को संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से पिछले साल नवाज़ा गया।



राम कुमार मल्लिक

पिछले दिनों दरभंगा घराने के वरिष्ठ गायक और ध्रुपद के शिक्षक राम कुमार मल्लिक को शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में योगदान के लिए पद्मश्री पुरस्कार दिए जाने की घोषणा हुई। वे दरभंगा में रहते हैं। प्रस्तुत है हाल ही में उनसे बातचीत का सम्पादित अंश–

प्रश्न : दरभंगा घराने के रामचतुर मल्लिक और सियाराम तिवारी को शास्त्रीय संगीत में योगदान के लिए पद्मश्री से सम्मानित किया गया। आपके पिता एवँ गुरु विदुर मल्लिक और अभय नारायण मल्लिक भी ध्रुपद के प्रसिद्ध गायक हुए, पर उन्हें यह सम्मान नहीं मिला। लगभग पचास सालों के बाद पद्मश्री इस घराने के हिस्से आया है, क्या देरी हुई?

उत्तर : पण्डित राम चतुर मल्लिक और सियाराम तिवारी के बाद यह सम्मान मुझे मिला है। विदुर मल्लिक और अभय नारायण मल्लिक को मिलना चाहिए था।

बाद में ही सही पर मुझे मिला है... मैं उसी घराने का हूँ।

आप दरभंगा-अमता घराने की बारहवीं पीढ़ी के गायक हैं। तेरहवीं पीढ़ी के गायक (मल्लिक ब्रदर्स) अपने गायन को लेकर हमारे बीच मौजूद हैं। कितनी पुरानी दरभंगा घराने की गायन परम्परा है?

हमारी संगीत की परम्परा पाँच सौ साल पुरानी है। तानसेन के घराने से ही हमारे पूर्वजों ने गायन सीखा था। राधाकृष्ण और कर्तारम (दो भाई और थे) ने ग्वालियर में रहकर भूपत ख़ान, जो तानसेन के नाती थे, 22 वर्ष तक संगीत की शिक्षा ग्रहण की जिसके बाद वे नेपाल बादशाह के पास आए। वहाँ वे दरबारी गायक थे।

एक समय की बात है, दरभंगा में भीषण अकाल पड़ गया और दरभंगा के शुरुआती महाराज बेनी माधव पता लगाने गए कि कोई ऐसा साधक हो जो अपनी साधना से जलवृष्टि करवा सके। उन्होंने कहा कि जो कुछ माँगेगा उसे वह देंगे। नेपाल बादशाह से मालूम हुआ

कि दो भाई संगीत सीखकर आए हैं जो मेघ-मल्हार गाकर पानी बरसा सकते हैं। वहाँ से दोनों भाइयों को बुलाया गया। वे दोनों भाई आए और दरभंगा राज में दरबार लगा। तानपुरा लेकर जब दोनों भाई ने मेघ-मल्हार गाना शुरू किया तो भंडार कोन से बादल उठा जो फैलता गया। पानी बरसने लगा। इतना बरसा कि महाराज ने हाथ जोड़ लिया कि अब प्रलय हो जाएगा। दोनों भाई फिर शान्त हुए। महाराज ने उनसे कुछ माँगने को कहा। दोनों भाइयों ने कहा कि लोभ से मैंने ये साधना ग्रहण नहीं किया, आपकी जो इच्छा हो दे दें। साढ़े सात सौ बीघा ज़मीन (जिस पर हम रह रहे हैं) अमता गाँव में उन्हें मिला और बहुत सारी चीज़ें भी। उन्हीं की पीढ़ी से हम हैं जो दरभंगा महाराज से जुड़े रहे।

आपने किनसे ध्रुपद गायन सीखा?

पहले तो अपने दादाजी (पण्डित सुखदेव मल्लिक) से सीखा फिर अपने पिता एवं अपने गुरु विदुर मल्लिक से। मैंने छह वर्ष से ही संगीत-साधना शुरू कर दिया था। बाबा रामचतुर मल्लिक का भी मुझे आशीर्वाद मिला। रामदीन पाठक (खंजड़ी वादक), सियाराम तिवारी ने भी मुझे आशीर्वाद दिया। अपने पिता के साथ अमरीका, यूरोप सहित पूरी दुनिया में मैंने गायन किया। हमारे घराने में शिवदीन पाठक हुए (मेरे दादाजी के मामा) उनका जो सितार बजता था वह तो विश्व में कोई नहीं बजा पाया। उनकी उँगली का रखाव इतना सुन्दर (सही) था, सब स्वरों के अंदर बद-बद, बद-बद होता था। रामेश्वर पाठक ने उन्हीं की छत्रछाया में कुछ-कुछ सीखा था, जो रामाशीष पाठक के दादा हुए।

दरभंगा घराने की प्रसिद्धि ध्रुपद गायन को लेकर है। यह किस प्रकार डागर घराने के ध्रुपद से अलग है? इस घराने की क्या विशिष्टता है?

हमारी गायन शैली अन्य घरानों से बहुत अलग है। हम गौहर-खंडार शैली को अपनाए हैं। वे 'री त न न तोम नोम...'करते हैं। हम 'ओम, हरि ओम अनंत हरि ओम' (गाकर सुनाते हैं) से आलाप शुरू होता है। इसके बाद नोम-तोम त न री..यही सब। मीड़ गौहर बानी का काम है और गमक खंडार बानी (गाकर सुनाते हैं)। इन दोनों को हमारे पूर्वज गाते थे। मेरे दादाजी, पिताजी और हम ख़ुद उसी परम्परा को अपनाए हुए हैं।

आपके पिता विदुर मल्लिक एक बंदिश गाते थे- राजा रामचन्द्र चढयो हैं त्रिकुट पर...

ये हमारी परम्परा की बंदिश है। यह राधाकृष्ण-कर्ताराम बाबा की बंदिश है, जो चार चरण में पूरी होती है। राग देसी में है–

राजा रामचन्द्र ज्यू चढ़यो हैं त्रिकुट पर
लंका गढ़ डगमगायो जबहि डंफ बाजे (स्थाई)

श्रवण कनक टंक पर रावण घन मेघनाद
कुंभकर्ण रण बिदारी देव गगन बाजे
बड़े-बड़े योद्धा सब युद्ध करवे को साथ चले
समुद्र तीर डारि के लश्कर ठहरायो है
हनुमान ऐसो वीर लंका को फूक गई
रावण को मार राम पचरंग फहरायो है।

रावण का वध जब राम ने किया, उसी का वर्णन है, इस बंदिश में। हमारे यहाँ फ़र्स्ट, सेकंड, थर्ड और फ़ोर्थ चार आलाप

हैं (इक गुण, द्विगुण, त्रिगुण और चौगुण)। डागर लोग तीन दर्जे का आलाप करते हैं, इतना ही फ़र्क़ है। डागर की पुरानी परम्परा है, मैं उन्हें अलग नहीं समझ रहा।

मैथिली भाषी होने के कारण मैं दरभंगा घराने की एक विशिष्टता की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहूँगा। शास्त्रीय संगीत में पारंगत होने के बावजूद भी यह घराना मैथिली के लोक कवि विद्यापति को गाता रहा है। मैंने विदुर मल्लिक, अभय नारायण मल्लिक और आपको भी गाते सुना। यहाँ पर मैं आपके गाए 'सुन्दरी तुअ मुख मंगल दाता', का ज़िक्र करना चाहूँगा जो इंटरनेट पर ख़ूब सुना जाता है...

विद्यापति गाने की सीख मुझे पिताजी से मिली। उनके संग्रह से मैंने राग-रागनियों को चुना। दरभंगा आकाशवाणी के लिए भी हमने गाया है। साथ ही मेरे पिताजी का कैसेट है- 'नाइटिंगल ऑफ़ मिथिला' उसमें विद्यापति के पद मिलेंगे। 'के पतिया ल जाएत रे मोरा प्रियतम पास' और 'कुँज भवन स निकसल रे रोकल गिरधारी' वहाँ मिलेगा। मैंने 'कखन हरब दुख मोर हे भोलानाथ' और विद्यापति की नचारी 'आजु नाथ एक व्रत महासुख लागत हे, तू शिव धरु नटभेस हम डमरू बजाएब हे' भी गाया है। ये हमारा अपना संग्रह है। ये सब रागों के अंदर है। ध्रुपद के साथ मैं ख़्याल, दादरा, ठुमरी, ग़ज़ल-भजन, लोकगीत भी गाता हूँ। चारों पट की गायकी दरभंगा घराने में आपको मिलेगी।

आपकी संगीत यात्रा का केन्द्र दरभंगा ही रहा है। साठ-सत्तर के दशक में दरभंगा और पटना में देशभर के संगीतकारों का जमावड़ा रहता है, ध्रुपद संगीत समारोह भी होते थे। बिहार की एक सांगीतिक-सांस्कृतिक पहचान थी, जो बाद के दशक में सिमट गई...।

राजनीति हावी होती गई और हम परम्परा को भूल गए।

20वीं सदी में ख़्याल का बोलबाला रहा, ऐसे में ध्रुपद गायकी पिछड़ गई। 21वीं सदी में इसका क्या भविष्य आप देखते हैं?

ध्रुपद को कोई हटा नहीं सकता है। यह अचल पद है। सारी दुनिया की संगीत का तत्त्व समझिए इसे। ख़्याल विचलित हो सकता है, ध्रुपद नहीं। कनक, मुरकी मूर्छना नहीं लगता, यह मीड़ और गमक की चीज़ है। दरभंगा परम्परा में इसे स्थिर गायकी और चलन के रूप में आप पाएँगे। इस घराने की नई पीढ़ी के लोग उसी रास्ते पर चल रहे हैं। पिताजी के शिष्य हैं वृजभूषण गोस्वामी, सुखदेव चतुर्वेदी, राधा गोविंद आदि, वे भी इसे अपनाए हुए हैं।

लेकिन बिहार के अन्य संगीत घरानों की बात करें तो वह कहीं सुनाई नहीं देता..

गया घराना ठुमरी घराना था। वहाँ बहुत अच्छे गायक जयरामजी थे, जो नशे के चलते बर्बाद हो गए। बेतिया घराने में दो-चार कलाकार थे। एक इंद्र किशोरजी हैं जो वृद्ध और असमर्थ हैं। मैं पाँच साल से पण्डित विदुर मल्लिक गुरुकुल (दरभंगा) में छात्र-छात्राओं को प्रशिक्षण दे रहा हूँ। लोगों में रुचि जागृत हो रही है। दस-बीस छात्रों को मैंने सिखाया है। अभिषेक मिश्र हैं पटना में। अभिषेक पाठक हैं, जिन्हें मैंने सिखाया है। मैं चाहता हूँ छात्रों की संख्या बढ़े। ❑

(साभार : 'समालोचन' वेब पत्रिका)

रंग-बिरंग

"आप क्या चाहते हैं, सर?" कैंसर की अपनी रुग्णावस्था के अन्तिम दिनों के दौरान मेरे बाबूजी ने मुझे समझाया था, जब भी कोई उत्तर न सूझे, सामने वाले पर यही सवाल दाग़ देना चाहिए। उस समय मैं अपनी बी.ए. के दूसरे वर्ष में थी और इधर-उधर पड़ोस के परिवारों के बच्चों को छुटपुट ट्यूशन दे रही थी। इस स्कूल का काम मैंने अपनी बी.ए. के बाद शुरू किया था।

आशा रानी को इधर नौकरी देने से पहले मुझे स्कूल-प्रबन्धक के कमरे में बुलाया गया। स्कूल प्रबन्धक को मेरी समझ पर बहुत भरोसा था और वे प्रत्येक नियुक्ति मेरी संस्तुति पर ही किया करते थे। उनकी राय में पहली कक्षा के पाँच विद्यार्थियों से शुरू किए गए इस स्कूल को बारह वर्ष की अवधि में आठ कक्षाओं के 661 विद्यार्थियों वाले स्कूल में बदल देना मेरे ही परिश्रम एवं उद्यम का परिणामी फल था।

"प्रणाम, सर" उनके कमरे में अपना आसन लेते ही मैंने उनका अभिवादन किया।

"आइए, मिस शुक्ल", स्कूल-प्रबन्धक ने मेरा स्वागत किया, "मदन लाल की इस विधवा पत्नी का यह प्रार्थना-पत्र जुगल किशोर बनाकर लाए हैं..."

जुगल किशोर हमारे स्कूल के हेड-क्लर्क थे और मदन लाल फ़ीस-क्लर्क किन्तु दुर्भाग्यवश पिछले ही माह मदन लाल की एक सड़क-दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी।

"आशा रानी आप हैं?" मैंने उसे और उसके प्रार्थना-पत्र को अपनी नज़र में उतारा।

"जी" वह रूमाल से अपने आँसू पोंछने लगी। तीस-पैंतीस वर्ष के बीच की उम्र की वह स्त्री मुझसे एक-दो बरस बड़ी भी हो सकती थी या एक-दो बरस छोटी भी। मैं तैंतीस बरस की हूँ लेकिन जो बैंगनी और चटख़ पीला रंग वह पहने थी, उन्हें मैं हमेशा दूर से ही देखती रही थी। उन दोनों रंगों को अपने पास आने का मौक़ा मैंने कभी न दिया था। पहनावे और दिखावट में मेरा चुनाव सादे और हल्के दिखाव-बनाव की साड़ियों



दीपक शर्मा
ई-मेल : dpksh691946@gmail.com

तक ही सीमित रहा करता है जबकि आशा रानी अपनी रोनी सूरत के बावजूद पूरी तरह से तैयार होकर आई थी। चेहरा तो उस का लिपस्टिक और बिन्दी लिए ही था, तिस पर बैंगनी रंग के बार्डर और पल्ले वाली चटख़ पीली साड़ी के साथ उसने बड़े करीने से अपने बाल एक चटकीले बैंगनी क्लिप में समेट रखे थे। हाथ की उसकी चूड़ी और कान की उसकी बाली ज़रूर अधमैले से नीले रंग की रही।

"आप बी.ए. तक पढ़ी हैं?" मैंने पूछा, "मगर सर्टिफ़िकेट साथ नहीं लाईं?"

वह रोने लगी।

"देखिए," मैं खीझ गई, "आप रोएँगी तो फिर हम कैसे देखेंगे कि आपको कहाँ रखें? आपकी पढ़ाई देखकर ही तो कोई काम आप को दिया जाएगा...।"

"बी.ए. पास हूँ मैं। सर्टिफ़िकेट कल लेती आऊँगी," उसने आँसू लोप हो जाने दिए और प्रकृतिस्थ हो ली, "मैं कुछ भी कर सकती हूँ।"

"बी.ए. में कौन-सी डिवीज़न पाए हैं?"

"नम्बर तो कुछ ऐसे ही थे। थर्ड डिविज़न के। कॉलेज तो कभी गई नहीं थी। प्राइवेट से ही परीक्षा दी थी," 'डिवीज़न' शब्द बोलते समय उसने 'ज़' की बजाए 'ज' का प्रयोग किया।

मैं मन-ही-मन गर्व से भर गई। बी.ए. क्या, मैं तो अपनी एम.ए. भी प्राइवेट पढ़ाई से किए हूँ, मगर डिवीज़न दोनों ही में प्रथम पाए हूँ।

"मदन लाल का काम आपको दिया जा सकता है," मैंने अपना निर्णय सुनाते हुए स्कूल प्रबन्धक की ओर देखा।

"जो आप उचित समझो", स्कूल प्रबन्धक ने हामी भरी।

"चलती हूँ, सर", मैंने कहा।

मैंने अपने दफ़्तर का रास्ता लिया और अपने पीछे आ रहे जुगल किशोर को निर्देश दिया, "कौन-कौन दिन किस-किस जमात की कितनी-कितनी लेट फ़ीस जमा करने का क्या-क्या टाइम रहता है, सब आशा रानी को समझा दीजिए। विस्तार से।"

उन दिनों वार्षिक परीक्षाओं के परिणाम घोषित किए जाने वाले थे और उससे पहले जिन छात्रों की फ़ीस के लेखे-जोखे के आधार पर कुछेक जो भी बक़ाया रहता था, उन्हें लेट-फ़ीस देने की सुविधा दी गई थी।

"जी, मैडम।"

हमारा स्कूल प्राइवेट है और इसलिए फ़ीस की रक़म और दिन तय करने की हमें पूरी स्वतन्त्रता है।

"आज हम जल्दी जाएँगी, दीदी", आशा रानी ने अपना रूमाल हवा में लहराया, "उधर लड़कियाँ हमारे इंतज़ार में घर पर हमारी बाट जोह रही हैं।"

"कैसी लड़कियाँ? कौन-सी लड़कियाँ?" मैंने हैरानी जतलाई।

"जी, दीदी," वह रो पड़ी, "आज हम बस आप लोग से मिलने ही आए थे। अपना काम हम कल समझ-बूझ लेंगे। चार-चार लड़कियाँ वह मुझ बेसहारा के सहारे छोड़ गए हैं। सबसे छोटी तो अभी कुल जमा तीन बरस ही की है...।"

"ओह?" मैं चिढ़ गई, "इसका मतलब आपके लिए काम करना सुगम न रहेगा?"

"मैडम," जुगल किशोर बातूनी होते हुए भी मेरे साथ मेरी उपस्थिति में संक्षिप्त बात कहने का आदी था, "आप निश्चिन्त रहिए। आज मैं सब देख लूँगा। आशा को आज जाने दीजिए। कल से काम शुरू कर देंगी।"

"आप अपने काम से मतलब रखिए, जुगल किशोरजी," उम्र में जुगल किशोर मुझसे बीस वर्ष बड़ा बेशक रहा किन्तु उसके संग कठोर स्वर प्रयोग में लाने का मुझे अच्छा अभ्यास था, "फ़ीस की रसीद काटने का काम आशा रानी ही को करना पड़ेगा।"

"जी, मैडम।"

मैं अपने दफ़्तर की ओर बढ़ ली।

"फ़ीस की रसीद काटने का काम अगर मैं न करूँ तो?" दस मिनट के अंदर आशा रानी मेरे दफ़्तर में चली आई, "आपकी सेक्रेटरी बन जाऊँ? तो? दीदी?"

"एक तो यहाँ हेड मिस्ट्रेस को मैडम कहा जाता है," आशा रानी की सीमा तय करना मेरे लिए अनिवार्य हो गया, "दीदी नहीं और फिर सेक्रेटरी का काम आप कर भी नहीं पाएँगी। उसके लिए कम्प्यूटर पर टाइप करना आना चाहिए और मुझे नहीं लगता कि आप टाइपिंग जानती होंगी। वैसे भी मैं अपनी सेक्रेटरी से बहुत सन्तुष्ट हूँ। मैं उसे बदलना नहीं चाहती।"

"जी, मैडम। मुझे कम्प्यूटर के बारे में कुछ मालूम नहीं, मगर मैं कुछ और भी कर सकती हूँ। आपकी फ़ाइल-वाइल आपकी अलमारी से ला-लिवा सकती हूँ...।"

"नहीं, आप जाइए और उधर वह काम देखिए जो आपको दिया गया है...।"

"लेकिन, दीदी," आशा रानी मेरी सामने वाली कुर्सी पर बैठ गई, "मुझे वहाँ अच्छा नहीं लग रहा। किसी पर-पुरुष के पास पहले कभी बैठी नहीं हूँ।"

"हमारे स्कूल में फ़ीस जमा करने का काम हेड-क्लर्क वाले कमरे ही में करवाया जाता है और जुगल किशोर कोई पर-पुरुष नहीं। स्कूल के हेड-क्लर्क हैं और आयु में पचास पार कर चुके हैं। आपके पिता समान हैं...।"

"फिर भी...फिर भी, हमें वहाँ अच्छा नहीं लग रहा," वह सिसकने लगी।

"यह धृष्टता है," मैंने आपत्ति जतलायी, "काम के समय आप अपनी कुर्सी पर दिखलाई देनी चाहिए...मेरे दफ़्तर की कुर्सी पर नहीं..."

कुर्सी से उठने की बजाए उसने अपनी रूलाई तेज़ कर दी।

"बड़े बाबू को बुलाओ," घंटी बजाकर मैंने चपरासी को आदेश दिया।

"मैं अंदर आ सकता हूँ, मैडम?" जुगल किशोर ने मुझसे दरवाज़े पर पूछा।

"इन्हें हमारे दफ़्तर के नियम समझाइए, जुगल किशोरजी..."

"बहुत अच्छा, मैडम..."

अगले दिन आशा रानी अपनी दो बेटियों को मेरे दफ़्तर में ले आई, "मैडम को नमस्ते करो और अपने नाम और कक्षा बताओ..."

"मेरा नाम सीमा है, आँटी," बड़ी लड़की पहले बोल दी। उसने चटख़ लाल रंग की पृष्ठभूमि में काले पोल्का डॉट्स वाली फ्रॉक पहन रखी थी, "मैं सातवीं जमात में पढ़ती हूँ..."

"मेरा नाम करिश्मा है, आँटी," दूसरी लड़की बोली। उसने तोतई रंग की हरी फ्रॉक पहन रखी थी जिसमें नीले रंग के फूल खड़े थे, अपनी डण्डियों समेत, "मैं तीसरी जमात में पढ़ती हूँ..."

"आँटी नहीं, मैडम," मैंने कहा। अगर मैं उन्हें अपने दफ़्तर के बाहर मिली होती तो यक़ीन मानिए मैं सौ-दो सौ रुपये उन्हें दे देती लेकिन अपने दफ़्तर में मुझे अनुशासन पसन्द था।

"इन्हें आज स्कूल दिखलाने लाई थी,"

आशा रानी थोड़ी झेंप ली, "सोचती हूँ इन्हें आपके स्कूल में दाख़िला दिलवा दूँ...।"

"उसके लिए पहले इन दोनों को अलग-अलग एक इम्तिहान देना होगा। यह देखने के लिए कि यह किस जमात में ली जा सकती हैं।"

"इम्तिहान लेना ज़रूरी है क्या?" आशा रानी परेशान हो ली।

"बिल्कुल ज़रूरी है," मैंने कहा, "और अब आप इन्हें स्कूल में तभी लाएँगी जब दोनों के इम्तिहान लेने के बारे में स्कूल-प्रबन्धक अपना निर्णय देंगे।"

फट से आशा रानी सिसकने लगी।

लड़कियों को भी मानो सिसकने का संकेत मिला और वे भी सिसक पड़ीं।

मैंने घंटी बजा दी।

"इन्हें बाहर ले जाओ," चपरासी से मैंने कहा और अपनी फ़ाइल सम्भाल ली। अगले ही दिन हमें अपनी कक्षा आठ के परिणाम घोषित करने थे और मैं फ़ेल हुए विद्यार्थियों के छमाही और तिमाही परीक्षाओं के रिकार्ड देखना चाहती थी। उन्हें फ़ेल घोषित करने से पूर्व।

आगामी सप्ताह भी आशा रानी लगभग रोज़ ही किसी-न-किसी बहाने मेरे दफ़्तर में आती रही और मुझसे झिड़की लेकर लौटती रही।

मगर उस दिन झिड़की खाकर वह लौटी नहीं। बोली, "आपकी वीणाजी से मिल लूँ क्या?"

वीणाजी मेरी निगरानी में हमारे स्कूल का पुस्तकालय देखती हैं, जो मेरे दफ़्तर के बग़ल में स्थित है। वह मुझसे आयु में दस-बारह साल बड़ी ज़रूर हैं मगर अगल-बग़ल होने के कारण हम दोनों की अच्छी बनती है। दोपहर के हमारे डिब्बे एक साथ खुलते हैं। चाय भी हमारी साँझी रहती है।

"क्यों? उनसे क्यों?"

"सोचती हूँ, उनका काम देख-समझ लूँ और फ़ीस के काम की बजाए पुस्तकालय वाला काम..."

"वीणाजी का काम बड़ी ज़िम्मेदारी का काम है, आशा रानी," मैंने उसकी बात काटी, "किताबों का रिकार्ड रखना और उन्हें ले जाने-वापस करने वालों के नाम का रजिस्टर क़ायदे से क़ायम रखना तुम्हारे बस का नहीं। उस काम का ज़िम्मा तुम्हें नहीं दिया जा सकता। तुम लापरवाह भी हो और कार्यक्षम भी नहीं.... फ़ीस की रसीद काटती हो, तो कभी विद्यार्थी का नाम ग़लत भरती हो कभी रक़म सही नहीं लिख पाती। वह तो ग़नीमत है जो जुगल किशोर आपकी ग़लतियाँ समय पर पकड़ लेते हैं।"

"लेकिन"

"लेकिन क्या? जाओ और जो काम तुम्हें दिया गया है, उसे देखो...।"

उसके जाने के बाद अभी बीस मिनट भी न बीते होंगे कि मुझे स्कूल-प्रबन्धक का बुलावा आ पहुँचा।

"जी सर," तुरन्त मैंने अपनी उपस्थिति वहाँ दर्ज करवाई।

"मिस शुक्ल, आप कार्यकुशल तो हैं लेकिन व्यवहारकुशल नहीं। अनुशासन सद्‌गुण ज़रूर है, लेकिन करुणा उससे बड़ा सद्‌गुण है।"

"मैं समझी नहीं..."

"आशा रानी अभी मेरे पास आई थी।"

"वह मेरे पास भी आई थी, सर। फ़ीस के काम की बजाए वह पुस्तकालय का काम चाहती है, जो उससे हो न पाएगा।"

"लेकिन, मिस शुक्ल," स्कूल प्रबन्धक ने अपना सिर हिलाया, "हमें याद

रखना होगा उसने अपना पति हाल ही में खोया है। ऐसी दारुण अवस्था में हमें उसका साहस बँधाए रखना है। तोड़ना नहीं..."

"मैं समझती हूँ वह यहाँ काम करने के लिए आई है, हमदर्दी जमा करने नहीं।"

"लेकिन उसके काम में इतनी धर-पकड़ करनी, इतना स्पष्टीकरण माँगना उचित है क्या? काम वह सीख जाएगी। इससे पहले वह अपने घर से बाहर कभी निकली नहीं है। उसे सहानुभूति की ज़रूरत है न कि सख़्ती की।"

"सर, ऐसा नहीं कि मुझे उससे सहानुभूति नहीं है। सहानुभूति है। पूरी सहानुभूति है मगर कुछ तो चटकीला उसका दिखाव-बनाव आड़े आ जाता है और कुछ उसका बात-बात पर आँसू टपकाना।"

"मजबूर है बेचारी। उसके पास ले-देकर बाहर पहनने वाले यही कपड़े रहे होंगे जो उसे पारिवारिक शादी-विवाहों में दिए-दिलवाए या मिले होंगे। और घर में पहनने वाले उसके कपड़े कुछ ज़्यादा ही मामूली रहे होंगे। सो बेचारी वही चटकीले पहनकर आ जाती है। इन्हें फेंक नहीं सकती और दूसरे ख़रीद नहीं सकती...।"

"मानती हूँ सर, मगर वह सज-धज? वे टूम-छल्ले? चूड़ियाँ? बालियाँ?"

"आपकी यह आपत्ति तो एकदम बेजा है। आपको नहीं मगर हो सकता है उसे आकर्षक दिखना ज़रूरी लगता हो। वह एक विवाहिता रही है और इन सबकी उसे पहले ही से आदत रही होगी।"

मुझे लगा यह मेरे साथ सरासर अन्याय था। स्कूल-प्रबन्धक न केवल आशा रानी को मुझसे ज़्यादा तूल दे रहे थे बल्कि यहाँ मुझे याद भी दिला रहे थे, मैं अविवाहिता रह गई हूँ। जानते भी रहे, पिता की असामयिक मृत्यु ने मुझ पर अपनी तीन छोटी बहनों की पहले पढ़ाई-लिखाई का और उत्तरोत्तर उन में से दो को ब्याहने का ज़िम्मा असमय आन लादा था और परिवार में उनसे बड़ी होने के कारण उसे निभाना मेरा कर्त्तव्य रहा था।

"आप क्या चाहते हैं, सर?" कैंसर की अपनी रुग्णावस्था के अन्तिम दिनों के दौरान मेरे बाबूजी ने मुझे समझाया था, जब भी कोई उत्तर न सूझे, सामने वाले पर यही सवाल दाग़ देना चाहिए। उस समय मैं अपनी बी.ए. के दूसरे वर्ष में थी और इधर-उधर पड़ोस के परिवारों के बच्चों को छुटपुट ट्यूशन दे रही थी। इस स्कूल का काम मैंने अपनी बी.ए. के बाद शुरू किया था।

"चाहता यह हूँ कि आप आशा रानी के साथ प्यार-स्नेह का बरताव करें। उसे पुस्तकालय में बैठने दें। शुरू में आप उसकी सहायता करें, किताबें और पत्र-पत्रिकाओं को निकालने और समेटने का काम सिखाएँ, और वीणा उधर फ़ीस वाला काम देख लेगी..."

"जी, यदि आप ऐसा ही चाहते हैं तो ऐसा ही होगा, सर" न चाहते हुए भी मैं नरम पड़ गई। लगी-लगाई अपनी नौकरी मैं गँवाना नहीं चाहती थी। घर में बीमार माँ थीं और तीसरी छोटी बहन की डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी होनी अभी बाक़ी थी।

"ऐसा सोचना ज़रूरी है। बेचारी घर से बाहर इससे पहले कभी निकली नहीं। पति खोने के बाद अब मजबूरी में इस नौकरी को पकड़े है। पुस्तकालय का काम धीरे-धीरे सीख लेगी। एक बात और! अपनी जिन दो बेटियों को वह यहाँ हमारे स्कूल में दाख़िल करवाना चाहती है, उसकी इस इच्छा को भी हमें पूरा करना चाहिए।"

"जी, सर" अनमने मन से मैंने कहा

और अपने दफ़्तर की ओर चल दी।

आशा रानी वहाँ मुझसे पहले पहुँच चुकी थी।

मुझे देखते ही अपने हाथ जोड़कर उठ खड़ी हुई और जब तक मैंने अपना स्थान ग्रहण नहीं किया वह उसी मुद्रा में खड़ी रही।

"मैं जानती हूँ, मैडमजी, आप मुझे पसन्द नहीं करतीं लेकिन यह सच है आपके पास मैं बहुत सुरक्षित महसूस करती हूँ।"

"ठीक है। अच्छी बात है। मुझे सर ने यही बताया," अप्रकृतिस्थ रही होने के बावजूद अपने पद की मर्यादा बनाए रखना मुझे ज़रूरी लगा," अब तुम्हें पुस्तकालय का काम मुझसे सीखना-जानना है।"

"मगर, मैडमजी, उससे पहले मुझे आपसे कुछ कहना है।"

"हाँ, बैठो और कहो," मैंने उसे अपनी बग़ल वाली कुर्सी लेने का इशारा किया।

वह वहाँ आन बैठी, बिना अपने जुड़े हाथों को अलग किए, और धीमे स्वर में शुरू हो ली, "आप ज़रूर सोचती होंगी मैंने सर से अपनी कुर्सी बदलवाने पर क्यों ज़ोर दिया होगा..."

"क्यों ज़ोर दिया?" मैंने अपनी खीझ दबा ली।

"मैंने सर से तो नहीं बताया मगर आपको ज़रूर बताना चाहती हूँ। जुगल किशोरजी भले आदमी नहीं हैं। उनके कमरे में उनके साथ बैठने में मुझे बहुत उलझन रहा करती है। वह ग़लत हरकतें किया करते हैं।"

"ऐसा क्या?" मैं स्तब्ध रह गई, "मगर जुगल किशोर स्वयं पाँच बेटियों के पिता हैं, जिनमें से दो इसी स्कूल से आठवीं जमात कर चुकी हैं और तीन अभी भी यहाँ पढ़ रही हैं।"

"मैं जानती हूँ, मैडमजी। यहाँ वाली तीनों से तो वह हमें मिलवा भी चुके हैं। उन्हीं लड़कियों के लिहाज़ की ख़ातिर कभी सर से उनकी शिकायत नहीं की। डर था वह कहीं उनसे उनकी नौकरी न छीन लें।"

"हाँ, यह बात भी सोचने की है," आशा रानी का ऐसा सोचना मुझे छू गया, "आप सही कहती हो, जुगल किशोर का नौकरी में बने रहना उन लड़कियों के भविष्य के लिए बहुत ज़रूरी है लेकिन उसे लज्जित करना भी कम ज़रूरी नहीं। वह सब मैं देख लूँगी मगर तुमने पहले मुझे यह बताया क्यों नहीं?"

"आपके पास जब भी आती, आप डाँट कर मुझे भगा देतीं। मौक़ा ही नहीं देतीं कि मैं कुछ बोलूँ-बतलाऊँ। दो-एक बार तो जुगल किशोर ही को बुलवाया आपने। मुझे आपके कमरे से बाहर ले जाने के वास्ते। जिससे इधर मैं कमज़ोर पड़ जाती और उधर उनकी हिम्मत और ज़ोर पकड़ लेती।"

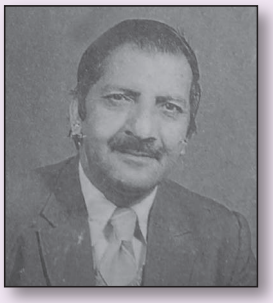
"मुझे तनिक अंदाज़ा न था, आप बार-बार मेरे पास क्यों आती रही थीं," मैं ग्लानि से भर उठी। कैसी आँख की अंधी रही मैं!

और आशा रानी के जुड़े हाथों को अलग करते हुए मैंने उन्हें अपने हाथों में थाम लिया, "मुझसे भयंकर भूल हुई मगर अब ऐसा न होगा बल्कि आपकी सर से कही दूसरी बात भी पूरी की जाएगी। सीमा और करिश्मा दोनों को इस स्कूल में दाख़िला दिया जाएगा।"

"आपको उनके नाम याद हैं?" वह हैरान हुई।

"मुझे नाम कभी नहीं भूलते," उसके हाथों को थपथपा कर मैंने उनसे अपने हाथ अलग कर लिए," और मैंने यह भी सोचा है, उन दोनों को इस स्कूल की यूनिफ़ॉर्म पहली बार मैं ही ख़रीद कर दिलाऊँगी।" ❑

कश्मीरी कहानी



बंसी निर्दोष

बंसी निर्दोष 1951 तक उर्दू में लिखते रहे, तत्पश्चात कश्मीरी भाषा की ओर प्रवृत्त हुए। कश्मीर से विस्थापित होकर जम्मू में स्वतन्त्र-लेखन। कई विशिष्ट पुरस्कारों से सम्मानित। 21 अगस्त, 2001 में निधन।

अनुवाद
शिबन कृष्ण रैणा



ई-मेल : skraina123@gmail.com

बेटे की तनख़्वाह

संसारचन्द की ग़ुलामी का यह आख़िरी दिन था। चालीस साल की ग़ुलामी बिताने के बाद आज वह आज़ाद होने जा रहा था। भीतर से वह एकदम पोला हो चुका था। गूदा ख़त्म और बाक़ी रह गया था ऊपर का छिलका। बस, छिलके को वह और अधिक रौंदवाना नहीं चाहता था। बहुत दिनों से उसे उस दिन की प्रतीक्षा थी जब उसके लड़के कुन्दनजी की नौकरी लग जाती और वह ग़ुलामी के इस बन्धन से मुक्त हो जाता। उसकी मुराद अब पूरी हो चुकी थी। बी०ए० कर लेने तथा पूरे तीन साल बेरोज़गार रहने के बाद अब उसका लड़का कुन्दनजी एकाउण्टेण्ट जनरल के ऑफ़िस में क्लर्क हो गया था। संसारचन्द की ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं था। उसे लग रहा था जैसे उसके बेटे को कोई बादशाही या कोई ऊँची पदवी प्राप्त हो गई हो।

बेटे को जिस दिन नियुक्ति पत्र मिला, संसारचन्द ने उसी दिन अपने सेठ को एक महीने का नोटिस थमा दिया और कहा, "यह महीना पूरा हो जाने के बाद मैं नौकरी छोड़ना चाहता हूँ। ख़ुदा साहब ने मेरी सुन ली, मेरे बेटे को नौकरी मिल गई। पूरे छह सौ रुपये मिलेंगे। छह सौ उसके और पेंशन के मेरे दो सौ। हम दो बूढ़ों और दो लड़कों के लिए काफ़ी हैं।"

संसारचन्द के घर में कुल चार सदस्य थे। वह ख़ुद, पत्नी और दो लड़के। बड़ी लड़की का विवाह उसने

सरकारी नौकरी से रिटायर होते ही छह वर्ष पहले कर दिया था। पिछले छह-सात सालों से वह हमारे साथ ही दुकान पर नौकरी कर रहा था। संसारचन्द इसे नौकरी नहीं ग़ुलामी कहता था। इसलिए नहीं कि प्राइवेट नौकरी उसे पसन्द न थी, बल्कि वह समूचे जीवन को इसी नज़र से देखता था। वह अक्सर कहा करता, "मैं तो भई, पैदाइशी ग़ुलाम हूँ। मेरी तो सारी ज़िन्दगी ग़ुलामी करते ही निकल गई। पहले सरकार की ग़ुलामी करता रहा, अब सेठ की कर रहा हूँ।" मगर अब उसे यक़ीन हो गया था कि उसकी ग़ुलामी के दिन समाप्त हो चले हैं। उसके बेटे को नौकरी मिल गई है। अब उसे कोई चिन्ता नहीं है।

महीने का आज आख़िरी दिन था। संसारचन्द कुछ ज़्यादा ही ख़ुश नज़र आ रहा था। उसका बेटा कुन्दनजी आज अपनी पहली तनख़्वाह घर लाने वाला था। पूरे छह सौ रुपये। यो संसारचन्द को ख़ुद पेंशन के अलावा दुकान से चार सौ रुपये मिलते थे और इस तरह कुल मिलाकर उसकी अपनी आमदनी छह सौ रुपये माहवार थी। मगर, बेटे के छह सौ रुपये उसे बहुत बड़ी रक़म लग रही थी। सम्भवतः छह हजार और छह लाख के बराबर। मुझे लगता है कि चालीस साल पहले संसारचन्द जब अपनी पहली तनख़्वाह घर लाया होगा, तब उसे उतनी ख़ुशी नहीं हुई होगी जितनी आज कुन्दनजी को अपनी तनख़्वाह घर लाते देख हो रही थी। मेरा वेतन संसारचन्द से ज़्यादा न था, यही कोई चार सौ के लगभग, मगर मैं जैसे चाहता वैसे अपनी इच्छानुसार ख़र्च करता। घर-गृहस्थी का ख़र्च मेरे पिताजी और मेरे बड़े भाई चलाते थे। ऊपर से मैं अभी तक अविवाहित ही था। इसलिए घर की ख़ास ज़िम्मेदारी भी मेरे ऊपर न थी। मुझमें और संसारचन्द में काफ़ी अंतर था। उसने एक लड़की की शादी कर दी थी और अभावग्रस्त जीवन बिताने पर भी ठीक-ठाक दहेज दिया था और लड़के वालों की हर फ़रमाइश पूरी कर दी थी। लड़की के सुख के लिए थोड़ा-बहुत कर्ज़ भी लेना पड़ा था। यह बात अब सात साल पुरानी हो गई थी। इन सात सालों में उसने रिटायर होने के बाद एक दूसरे प्रकार की ग़ुलामी स्वीकार की थी। घर चलाने के लिए, दो लड़कों को शिक्षा देने के लिए और आर्थिक दृष्टि से सुरक्षित अनुभव करने के लिए उसने न चाहते हुए भी सेठ की ग़ुलामी स्वीकार कर ली थी। इधर, अब दो लड़कों में से एक की बड़ी दौड़-धूप के बाद, नौकरी लगी थी। पिछले सात सालों से संसारचन्द इसी प्रतीक्षा में था और शायद सात हज़ार बार मुझसे बोला था, "मजीद भाई! कुन्दनजी के नौकरी पर लगते ही मैं इस ग़ुलामी से आज़ाद हो जाऊँगा। बहुत कर ली चाकरी!"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि संसारचन्द अपने काम में काफ़ी होशियार था। हमारे सेठजी की आज तक किसी भी एकाउण्ट जानने वाले कर्मचारी से नहीं बनी थी। मगर, संसारचन्द उनका विश्वास का आदमी बन गया था। उनके सभी व्यावसायिक राज़ों से वह वाक़िफ़ हो चुका था। सेठजी जो भी करने को कहते– सच या झूठ, संसारचन्द उसे आँखें मींचकर चुपचाप कर डालता। उसका मानना था, "मैं तो आदेश का पालन करता हूँ, पाप-पुण्य का भागीदार तो सेठ खुद

है। हम लोग तो भई चाकर हैं, ग़ुलाम हैं। हमें तो पहले ही यह सज़ा मिल चुकी है। ग़ुलामी और ग़रीबी दोनों सज़ाएँ ही तो हैं। सेल्स-टैक्स व इन्कम टैक्स वालों के सामने गिड़गिड़ाना व बेचारगी प्रकट करना, अपने लिए नहीं, सेठ की सुख-सुविधा के लिए, यह अभिशाप नहीं, सज़ा नहीं तो और क्या है? इस सबके एवज़ में सात तारीख़ को चार सौ रुपये मेहनताना लो, यह नैतिक और बौद्धिक दासता नहीं तो क्या हैं? महीने की सात तारीख़ को तनख़्वाह के रुपये आँखों से लगाकर और उन्हें चूमकर संसारचन्द अक्सर दोहराता, "मजीद भाई, ख़ुदा से माँगना कि मेरे कुन्दनजी की नौकरी जल्दी से लग जाए। तब मैं हाथ-पैर पसारकर ख़ूब आराम करूँगा। रिटायर होने के बाद भी मैं बेफ़िक्री की नींद कभी नहीं सोया। पहले यह सोचा करता था कि दफ़्तर पहुँचने में देर न हो जाए, अफ़सर नाराज़ न हो जाए। आज भी कभी-कभी नींद उचट जाती है, यह सोचते-सोचते कि दुकान खुल गई होगी, सेठ घर से चल पड़ा होगा।"

संसारचन्द की इन तमाम चिन्ताओं का आज अन्तिम दिन था। आज उसका बेटा अपना पहला वेतन घर लाने वाला था और इसी के साथ उस नोटिस का भी एक महीना होने वाला था जो संसारचन्द ने सेठजी को नौकरी से मुक्ति पाने के लिए दिया था। मुझे यक़ीन था कि आज संसारचन्द ज़िन्दगी में पहली बार चैन की नींद सोएगा। अब वह किसी का चाकर नहीं, किसी का ग़ुलाम नहीं। सरकारी नौकरी का मुझे ख़ुद तो कोई अनुभव न था, मगर संसारचन्द की इस बात से मैं सहमत था कि प्राइवेट कर्मचारियों के लिए सेठ की नौकरी ग़ुलामी से भी बदतर होती है। समान अधिकारों की बात वहाँ कल्पना मात्र है। कर्मचारी इन्सान नहीं सेठ का ख़रीदा हुआ ग़ुलाम है। उसकी सात पीढ़ियाँ उसकी ग़ुलाम हैं। उसके मुहल्ले वाले उसके ग़ुलाम हैं। उसे दिनभर जाने क्या-क्या सुनना पड़ता है, "तू किस मुहल्ले का है बे? ग्राहक को पटाने का तुझे कोई शऊर भी नहीं है, क्यों? खाएगा मनभर मगर काम नहीं करेगा रत्तीभर, कौन-सी लद्धड़ बस्ती का है तू? तू तो किसी काम का नहीं है।" आदि-आदि।

वैसे तो हमारा सेठ उतना ढीठ नहीं था कि हर वक़्त अपने मुलाज़िमों को फटकारता रहता। उसने बहुत जगहें देखी थीं। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता आदि वह महीने में दो-एक बार जाया ही करता था। यूँ तो वह खुले दिमाग़ का था पर फिर भी अपनी दुकान के मुलाज़िमों से घर के छोटे-मोटे दो-एक काम करवा ही लेता था– राशन मँगवाना या नल-बिजली का बिल जमा करवाना, गैस-सिलेण्डर लाना, ले जाना, बच्चों को स्कूल ले जाना और लाना। सेठ का घर का काम करते मुझे बड़ी ग्लानि होती थी। मृत्यु-समान पीड़ा होती थी। मगर, दूसरे मुलाज़िम यह काम ख़ुशी-ख़ुशी कर लेते थे। ख़ुद संसारचन्द भी उनमें शामिल था। उसका कहना था कि सेठ की नौकरी करो और उसके घर के दो-एक काम न करो, यह कैसे हो सकता है? दुकान पर यदि काम नहीं है तो ठाले बैठे तनख़्वाह नहीं देगा सेठ, कोई-न-कोई तो बेगार लेगा ही।

वे जाड़े के दिन थे। ठण्डे जमे हुए से। मौसम भारी-भारी और आकाश लटकता

हुआ-सा। बर्फ और पानी से सड़कें लबालब। बिना लोगों के बाज़ार ख़ाली जेबों की तरह। न कोई नई सूरत दिखाई दे और न आदमी और आदमी में कोई खास फ़र्क ही नज़र आए। कनटोप लगाए, पट्टू के कोट पहने और ऊपर से ओवरकोट चढ़ाए सारे चेहरे व सारी सूरतें थकी-थकी व घिसी-घिसी-सी लगतीं, बिल्कुल संसारचन्द की तरह। मगर आज यह बात नहीं थी। पिछले एक महीने से संसारचन्द के चेहरे पर कुछ रौनक-सी आ गई थी, क्योंकि यही एक महीना हुआ था कुन्दनजी को नौकरी पर लगे हुए। कुन्दनजी की नौकरी के आइने में संसारचन्द ने अपने सुखी-सुदृढ़ बुढ़ापे के जाने कितने मीठे-सच्चे ख़्वाब देखे थे। उसके ये ख़्वाब आज पूरे होने वाले थे। दुकान में आज उसका यह आख़िरी दिन था। मेरा मन भारी हो चला था। इधर, पिछले कुछेक वर्षों से मेरा संसारचन्द के साथ एक अजीब तरह का रिश्ता व लगाव पैदा हो गया था। मगर, साथ ही मैं ख़ुश भी था। सोचा, चलो अच्छा ही हुआ, आज़ाद हो गया इस ग़ुलामी से। कहाँ तक घसीटता इस बूढ़ी काया को? चालीस वर्षों से खट रहा है। अब इसे आराम की ज़रूरत है। बेटा आराम न देगा तो कौन देगा? सभी मुलाज़िमों से मिल-मिलाने के बाद संसारचन्द ने विदा ली और कुछ जल्दी ही घर चला गया।

"संसारचन्दजी, कभी बीच-बीच में दर्शन देते रहिएगा", कहता हुआ मैं सड़क तक उनके साथ हो लिया। ज़िन्दगी का क्या भरोसा! जाने फिर कब मिलना हो? मैं उस रात देर तक इस बात पर सोचता रहा।

अगले ही दिन संसारचन्द दुकान में पुनः उपस्थित हो गया। उसे देख हम सबको हैरानी हुई। वह सेठ से बोला, "जनाब! मैं अपना नोटिस वापस लेना चाहता हूँ।"

सारे कर्मचारी प्रसन्न हो गये। सेठ ज्यादा ही। मगर मैं नहीं। संसारचन्द को अलग ले जाकर मैंने पूछा, "क्यों संसारचन्दजी? आप तो बेफ़िक्री की नींद सोने वाले थे, चालीस साल की थकान उतारनी थी, इस ग़ुलामी से आज़ाद होना था! कुन्दनजी को तनख़्वाह नहीं मिली क्या?"

"हाँ जी, मिली।" उसके गले से बड़ी मुश्किल से आवाज़ निकली।

"तो फिर?"

"भई तनख़्वाह उसे मिली थी मगर सारा-का-सारा घर लाने से पहले ही ख़र्च कर डाला। अपने लिए सूट-बूट और दूसरा सामान ले आया। ठीक ही कह रहा था वह। अपने स्वार्थ के कारण मैं असलियत समझ नहीं पा रहा था।"

"क्या कहा उसने?" मैंने बेताबी से पूछा।

कहने लगा, "मेरे भी कई तरह के ख़र्चे हैं। मुझे भी दुनियादारी निभानी है। जैसे आज तक घर चल रहा था, वैसे अब क्यों नहीं चल सकता?"

संसारचन्द की यह बातें सुनकर मैं उससे नजरें मिला न सका। ग्लानि की बदमज़गी मेरे अंग-अंग में फैल गई। मुझसे कुछ भी कहते न बना। आज महीने की पहली तारीख़ थी। सात तारीख़ को मुझे जैसे ही तनख़्वाह मिली, मैंने सारे रुपये अपने बाप के सामने रख दिए। उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। उन्हें दौरा-सा पड़ा मेरी तनख्वाह देखकर! ❑

दहक

मत गिराओ बंधु
किसी सलीके की दीवार को

उस ओर बैठी हैं कुछ स्त्रियाँ
अपनी आबरू के भीतर सिमटी हुई

ठंडी राख के ढेर की मानिंद
शान्त, श्वेत और निश्चिन्त

यह तो तय है
ठंडी राख के ढेर में
छुपी रह सकती है कोई दहक
सुलग सकती है फिर से कोई आग

एक हवा के झोंके के इंतज़ार में पड़ी है
तुम्हारी चीख
ठंडी मिट्टी समझकर
कभी बैठकर कुरेदना मत कोई राख का ढेर

किसी आँख की कोर पर टिकी हुई कोई बूँद
बदल सकती है तुम्हारे शहर का मिज़ाज

अगर बूँद जा मिली किसी बादल के साथ
तो बरस सकती है बाढ़ बनकर

या तेज़ाब में होकर तब्दील
उतार सकती है तुम्हारी हज़ारों वर्षों
पुरानी दंभ भरी चमड़ी को

जा मिलेगी किसी तिनके भर तूफ़ान से



प्रतिभा चौहान
ई-मेल : cjpratibha.singh@gmail.com

तो मचाएगी खलबली पूरे समुद्र में

उजाड़ देगी तुम्हारी लग्गियाँ और मचानों को
क्या हुआ अगर
वह बरस जाए बिजली बनकर

जला ही बैठे धरती का सीना
जहाँ तुम्हारी सत्ता की लहलहाती फ़सलें ज़िन्दा हैं।

सुनना इस तरह

किसी आदमी की सिर्फ़
ज़ुबान की भाषा ही मत सुनना

कुछ सुनना मौन से
कुछ अनकहे और कुछ कहे से

कुछ छूटे हुए शब्दों से
तो कुछ कहे गए शब्दों की गहराई से

जीवन में, जीवन की भाषा से
इस तरह से जुड़ जाना कि समझना मन की भाषा

ठीक उसी तरह जैसे तुम समझ लेते हो
भाव की गहराई से बेज़ुबानों की भाषा

पहाड़, पत्थर, चौराहे, तिराहे,
सूखी घास, नदी और झरने

हर चीज़ के मायने जानते हो
उसकी गति और गहराई से तारतम्य बिठाते हुए

किसी भी चीज़ को समझने में
मस्तिष्क के किसी तंतु का उपयोग नहीं करते

मनुष्यता के इतिहास में प्राचीन काल से अब तक
भाषाओं की परम्परा में
मौन से कहे गए शब्दों के अर्थ
निकाले गए बड़े ही गहरे

मौन की एक विस्तृत भाषा
विचरती रही पीढ़ी-दर-पीढ़ी

वही सबसे ज़्यादा समझा गया
जो कभी नहीं कहा गया। ❑





कोई चुरा रहा है

कोई चुरा रहा है चुपके-चुपके
हमारा समय
रोटी की तरह खाता है हमारा वक्त
सूती कपड़े की तरह
तंग हो गए हैं हमारे दिन-रात
हमारा वजूद समा नहीं रहा है उनमें

ग़रीब की चादर बन गया है समय
सिर ढँको तो पाँव नंगे
पाँव ढँको तो सिर
ये हाथ कहाँ दिखाई देते हैं
जो नचा रहे हैं हमें?
हम कठपुतलियाँ बन गए हैं
क्योंकि नाच रहे हैं
पर काठ के नहीं बने हम
कि जितना नचाओ हम थकेंगे नहीं

हम जीवित हैं
साँसें चल रही हैं हमारी
हमारे हाथ-पैर भी चल रहे हैं
पर किसी और के इशारे पर
और हर दिन हम अपने हरे पत्ते खोकर
बनते जा रहे हैं नंगे पेड़

हम बंधुआ मज़दूर बन गए हैं
बाज़ार के ग़ुलाम
बाज़ार सिर्फ़ अपना विस्तार चाहता है
उसके लिए दुनिया में और कुछ नहीं
किसी का वजूद नहीं



अंजना वर्मा
ई-मेल : anjanaverma03@gmail.com

सब बेकार
हमें भी तो बनाता जा रहा है वह
बेजान और निस्सार

घर बनाने वालियाँ

लड़कियाँ ही तो इतनी आसान होती हैं
कि उन्हें उनकी मिट्टी से उखाड़ कर
कहीं फेक भी दिया जाए तो
जड़ जमा लेंगी नई मिट्टी में
न जाने
उनमें इतना जीवन क्यों भरा रहता है?
कि मरुस्थल में भी जी लेती हैं

उनको घर से भगाने के लिए
कितने अनुष्ठानों की परम्परा रही है
बड़े समारोह के साथ
एक मिट्टी से निकालकर
दूसरी मिट्टी में रोप दिया जाता है उन्हें
बिना यह जाने कि
वहाँ थोड़ा जल है या नहीं
थोड़ी धूप है या नहीं
थोड़ी चाँदनी पहुँचेगी या नहीं
उसकी कुछ ठंडी बूँदें भी
नसीब होगी या नहीं

यह सब कुछ न भी हो तो
वे अपनी जड़ें फैलाने लगती हैं
दीवार में उगे पीपल की तरह
कितना भी आँधी-पानी आए
जड़ें नहीं उखड़ती उनकी

ख़ुशबू हैं बेटियाँ

बेटियों के होने से
महकता है घर
महकता है घर-बाहर
महकती है सारी दुनिया

परिवार में किसी को क्या चाहिए
उन्हें हमेशा याद रहता है
माता-पिता से हज़ारों मील दूर जाकर भी
दूर नहीं होतीं
रहती हैं उनके ही क़रीब
कौन-सी दवा ले रही है माँ?
पापा की तबीयत कैसी है?
पापा की खाँसी उसे सुनाई दे जाती है
वह जहाँ भी हो
माँ के घुटनों का दर्द
उसके घुटनों में टीसता है

उसे सब पता रहता है
फ़ोन पर माँ से पूछती रहती है सारी बात
वह घर का पुराना हरसिंगार
अभी फूलता तो है न?
और वह अपराजिता की बेल
अभी खिलती है न उसी तरह?
और वह नींबू ख़ूब फलता है न?
फिर एक हँसी
इस बार गुलदाउदी रोपी गई?
या नहीं?
कुछ तस्वीरें भेजो ना!
आज क्या खाना बनाया तुमने?

बेटियाँ इत्र हैं
एक से दूसरी शीशी में डाल दी जाती हैं
तो भी पुरानी शीशी में
ख़ुशबू बनकर समाई रहती हैं। ❑

अंतःकथा

मेरे और उसके बीच की अंतःकथा
गहरे पानी में उतरी कभी नहीं रही

फिर भी मालूम नहीं क्यों लोगबाग
बखानते अपना अंतर्ज्ञान अंतर्बोध
बुरी तरह उत्तेजित आक्रोशित
मेरे और उसके सम्बन्ध को लेकर

जो सम्बन्ध प्रकट था वर्षों से
जिसमें न कोई अंतर्द्वंद्व था
न कोई अंतर्धारा थी
न कोई अंतर्द्वार था

उसे लेकर इतना अंतर्युद्ध
उसे लेकर इतना विरोध विवाद
क्यों था, उसका मेरा भी प्रेम
कहाँ समझ पाया

पर प्रेम तो प्रेम ही था
कहाँ रह पाया छिपा
कहाँ रह पाया क़ैद
किसी छल की तरह

प्रकट रोज़ हो ही जाता था
उसका और मेरा प्रेम



शहंशाह आलम
ई-मेल : shahanshahalam01@gmail.com

कभी किसी समुद्र के निकट
कभी किसी पेड़ के नीचे
कभी किसी हरे मैदान में
कभी हवाओं पर चलते हुए

यही थी उसकी मेरी अंतःकथा
दोषरहित छलहीन अकलंक
और अकाट्य भी
बिलकुल पहाड़ी नदी की तरह।

अविरत जल

मेरे भीतर जल है
लगातार बहता हुआ
पूरी तरह लयात्मक
किसी झरने-सा
पूरी तरह सोते पाषाणों को
सोते हुए मनुष्यों को
उठाता-जगाता हुआ

जैसे मचलता है उसका भी जल
जैसे थिरकता है उसका भी जल
जैसे छलकता है उसका भी जल
उसी के देहकुण्ड की
मधुशाला में झरकर गिरीं
देवदार की पत्तियों के साथ

वैसे ही तो रेतीले इस समय को
जलथल कर रहा है
मेरे भीतर का जल
अविचलित विजित विरामहीन
प्रकट मेरे जीवन की
सारी कठिनाइयों को
कहीं और बहा ले जाते हुए। ❑

है बस ये मुनासिब

जो तुम चाहो वही मैं बात बोलूँ
तुम्हारे बिन ज़ुबाँ हरगिज़ न खोलूँ

अकेले में तो रोते हैं सभी
मैं गले मिलकर किसी के साथ रो लूँ

हमारे वास्ते है बस ये मुनासिब
तू हो ले राह अपनी मैं भी हो लूँ

नज़र आएँ जो अपने ग़ैर जैसे
निगाहें ग़ैर को मैं कैसे तोलूँ

चले आते कभी जो चाहते तुम
ख़याले यार से कब तक मैं बोलूँ

हज़ारों रंग हैं तबियत के आख़िर
बता दे कौन-सा मैं रंग घोलूँ

किनारे तोड़ कर बहती नदी में
लगे हाथों मैं अपने हाथ धो लूँ

तुम्हें मुश्किल है दोनों ही तरफ़ से
जो मैं बोलूँ बता दे क्या मैं बोलूँ

मुझे थोड़े से अपने ख़्वाब दे दे
ज़रा से ख़्वाब वैसे ही मैं बो लूँ



विपिन जैन
ई-मेल : vipinkrjain54@gmail.com

अच्छी घड़ी है

यही बात घेरे सभी को खड़ी है
तुझे क्या पड़ी है मुझे क्या पड़ी है!

कभी दिन थे छोटे, कभी रात छोटी
ये दिन-रात की चलती रहती घड़ी है!

न होते, न होंगे सभी दिन बराबर
रही भूमिका तो समय की बड़ी है!

मिले मुझको काँटे, मगर फूल तुझको
तमन्ना यही मेरे दिल में जड़ी है!

अगर ज़िन्दगी काम आए किसी के
उसे मान लो वो ही अच्छी घड़ी है!

ख़ुशी एक जैसी न मिलती सभी को
कहीं पर छिपी आँसुओं की लड़ी है!

नहीं बात कोई भी इतनी बढ़ाना
कोई बात होती न ख़ुद में बड़ी है!

मिलेगा वही, जो भी मिलना तुझे है
तुझे फिर ये किस बात की हड़बड़ी है! ❑



‘स्पर्धा आजकल’ स्तम्भ में इस अंक से ‘आजकल’ के नवम्बर 1961, जनवरी 1962, मार्च 1962, जून 1962 और जुलाई 1962 में प्रकाशित ‘छायावाद का पुनर्मूल्यांकन’ आलेख धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों को विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में यह सामग्री उपयोगी साबित होगी।

छायावाद का पुनर्मूल्यांकन

पिष्टपेषित बातों को दोहराना अच्छा नहीं होता किन्तु किसी प्रवृत्ति का मूल्यांकन करते समय उसके सम्बन्ध में व्यक्त किए गए पूर्व विचारों से बचा भी नहीं जा सकता। इसलिए छायावाद की चर्चा शुरू करने के लिए फिर हमें उन विचारों पर विहंगम दृष्टि डालनी ही होगी जो छायावाद के प्रारम्भ में विभिन्न प्रकार के आचार्यों द्वारा व्यक्त किए गए थे। छायावाद अपनी भावगत और शिल्पगत नवीनता तथा सूक्ष्मता के कारण इतिवृत्तात्मक या स्थूल कविताओं के अभ्यासी आलोचकों की पकड़ में नहीं आया। पकड़ में नहीं आने वाली चीज़ को पकड़ने का प्रयास करना ही श्रेयस्कर मार्ग है किन्तु समाज की कुछ ऐसी ही विडम्बना रही है कि उसके बड़े-बड़े आचार्य भी ऐसे नवीन प्रयासों को या ऐसे सत्यों को पहचानने और अनुभव करने के स्थान पर शुतुरमुर्ग़ की तरह बालू में सिर गढ़ा कर झुठलाना चाहते हैं किन्तु क्या झुठला पाना इतना आसान होता है? जब वे देखते हैं कि यह प्रयास तो बढ़ता ही जा रहा है तो वे अपनी साधना द्वारा प्राप्त सारे पुण्यों को संचित कर उसे शाप देना चाहते हैं। प्राचीन काल में शाप चाहे जिसे भी खाता रहा हो, आजकल वह शाप देने वाले को हो खा बैठता है क्योंकि शाप को कुछ खाना चाहिए। जिस पर शाप छोड़ा गया है वह बलवान है। अतः शाप



रामदरश मिश्र

इतना भूखा होकर शाप देने वाले पर टूट पड़ता है।

छायावाद को शाप देने वालों ने छायावाद का बड़ा मज़ाक उड़ाया है। समझा कि वह काव्य-वंश में कोई बड़ा ही विचित्र बालक पैदा हो गया है जो पंखों वाला है, जो जन्म से ही आकाश में ताकता है, दूध और पानी पीने के स्थान पर आँसू पीता है, जो पैदा होते ही शून्य की, असीम की बहकी-बहकी बातें करता है और जो माँ को छोड़कर पंखों पर उड़-उड़कर अनन्त में विलास कर रहा है।

उस युग की प्रतिनिधि पत्रिका 'सरस्वती' में छायावाद का सर्वप्रथम लेख जून सन् 1921 ई. के अंक में मिलता है। किन्हीं सुशील कुमार ने हिन्दी में 'छायावाद' शीर्षक एक संवादात्मक निबन्ध लिखा है। बाद में भाग लेने वाले कुल चार व्यक्ति हैं : ब्राह्मण कन्याविद्यालय में शिक्षा प्राप्त सुशीला देवी, उनके अरसिक किन्तु लक्ष्मी के कृपा पात्र पति हरिकिशोर बाबू, चित्रकार रामनरेश जोशी और कवि सम्राट पन्तजी। पहले केवल प्रथम तीन व्यक्तियों में जोशीजी के एक छायाचित्र पर बातचीत होती है जिसे उन्होंने पन्तजी की एक कविता के आधार पर बनाया है। चित्र के नाम पर बढ़िया फ्रेम में मढ़ा कोरा काग़ज़ है और उसके नीचे लिखा है 'छाया'। हरिकिशोर बाबू के अनुसार वह "निर्मल ब्रह्म की विशद छाया है।" स्वयं जोशीजी ने भी उसमें किसी प्रकार 'अनन्त की अस्पष्टता को स्पष्ट करने' का प्रयत्न किया था। अंत में पन्तजी आते हैं, वे भी कविता के नाम एक कोरा काग़ज़ प्रस्तुत करते हैं जिसका आधार जोशीजी का वही चित्र है। हरिकिशोर बाबू के शब्दों में, "यह तो वाणी की नीरवता है, निस्तब्धता का उच्छ्वास है, प्रतिभा का विलास है, और अनन्त का विलास है।" कवि सम्राट कहते हैं, "छायावाद का प्रधान गुण है अस्पष्टता। भाव इतने अस्पष्ट हो जाएँ कि ये कल्पना के अनन्त गर्भ में लीन हो जाएँ। मेरी यह सम्मति है कि शब्द अक्षरों से बनते हैं और अक्षर अविनाशी हैं, अज्ञेय हैं, अनन्त हैं। अतएव हमें भाषा को वह रूप देना चाहिए जिससे वह नीरव हो जाए। वह कर्णश्रुत न होकर हृदयगम्य हो, इन्द्रियगोचर न होकर आत्मा से ग्राह्य हो।"

आचार्य महावीर प्रसाद ने भी छायावाद का अर्थ समझने में भूल की। उनकी समझ में नहीं आया कि छायावाद का ठीक-ठीक अर्थ क्या है?

यह सारा बवाल इसलिए पैदा हुआ कि सभी लोग छायावादी आंदोलन को मौलिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण और मूल्यांकन करने के स्थान पर 'छायावाद' नाम के ही पीछे पड़ गए। कभी-कभी किसी प्रवृत्ति के लिए, कभी विरोध में, कभी मज़ाक में और कभी गम्भीरता से भी एक नाम दे दिया जाता है। वह नाम तो मात्र सांकेतिक होता है, कभी-कभी व्यर्थ भी होता है, जैसे, प्रयोगवाद, किन्तु उस नाम के साथ सम्बद्ध जो नवीन चेतना है उसको परखने के स्थान पर कुछ आलोचक प्रवर नाम का ही उलटा-पुलटा अर्थ करने में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। शुरू में छायावाद के साथ भी ऐसा ही हुआ। छायावाद की सृष्टि में कौन-सी नवीन सामाजिक चेतनाएँ और परिस्थितियाँ काम

कर रही थीं और छायावाद की प्रवृत्तियाँ क्या थीं, इसकी चर्चा न कर 'छायावाद' नाम के ही स्पष्टीकरण में लोग रह गए। छायावादी कविता में जो अज्ञात असीम शब्द आते हैं, उन्हें रहस्यात्मक मानकर छायावाद और रहस्यवाद को एक कर दिया गया। अर्थात छायावाद को शुद्ध मानवीय धरातल की कविता न मानकर विरोधियों और समर्थकों दोनों ने अपने-अपने ढंग से उसे उसके लाक्षणिक अर्थों को न समझ सकने के कारण लोगों ने या तो उसका मज़ाक किया कि यह पागलपन की बहक है या प्रशंसा की कि यह आध्यात्मिक जीवन की गरिमा से सम्पन्न है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद को कुछ अधिक गम्भीर दृष्टि से देखा किन्तु वे अपनी सीमाओं के कारण छायावादी काव्य को दो संकुचित अर्थों में स्वीकार करके रह गए,(1) रहस्यवाद के अर्थ में "जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य वस्तु से होता है अर्थात जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की व्यंजना करता है।" शुक्लजी के अनुसार, "छायावाद का यह रहस्यवादी रूप पुराने सन्तों और साधकों की वाणी का अनुकरण है जो तुरीयावस्था या समाधिवस्था में नाना रूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देती हुई मानी जाती थी। शुक्लजी मानते हैं कि सन्तों की इस वाणी का प्रभाव ब्रह्म समाज पर पड़ा था। अतः 'वहाँ जो भजन बनते थे वे छायावाद कहलाते थे। धीरे-धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहाँ के साहित्य क्षेत्र में आया और फिर रवीन्द्र बाबू की धूम मचने पर हिन्दी के साहित्य क्षेत्र में प्रकट हुआ।" (2) शैली के अर्थ में- सन् 1885 में फ्रांस में रहस्यवादी कवियों का एक दल खड़ा हुआ जो प्रतीकवादी (सिम्बालिस्ट) कहलाया। वे अपनी रचनाओं में प्रस्तुत के स्थान पर अधिकतर अप्रस्तुत प्रतीकों को लेकर चलते थे। इसी से उनकी शैली की ओर लक्ष्य करके प्रतीकवाद का व्यवहार होने लगा। आध्यात्मिक या ईश्वर प्रेम सम्बन्धी कविताओं के अतिरिक्त और सब प्रकार की कविताओं के लिए भी प्रतीक शैली की ओर वहाँ प्रवृत्ति रही। हिन्दी में 'छायावाद' शब्द का जो व्यापक अर्थ रहस्यवादी रचनाओं के अतिरिक्त और सब प्रकार की रचनाओं के सम्बन्ध में ग्रहण हुआ, वह इसी प्रतीक शैली के अर्थ में।

इन समालोचकों ने छायावाद के साथ न्याय नहीं किया। स्पष्ट है कि आचार्य शुक्ल जैसे गम्भीर समालोचक ने भी छायावाद को मात्र शैली का आंदोलन माना। यदि कोई इसका अपना विषय हो सकता है तो वह था रहस्यवाद। रहस्यवाद जो शुक्लजी की दृष्टि में जीवन से असम्बद्ध था जिसने अज्ञात और अनन्त प्रियतम को जिज्ञासा के स्थान पर प्रेम का आलम्बन बनाकर काव्य में एक मिथ्या धारणा की सृष्टि की। आचार्य शुक्ल की इस व्याख्या में विषय और शिल्प दोनों का अलगाव दृष्टिगोचर होता है। यानी एक नई शैली पहले स्वीकार कर ली जाती है फिर उसमें मनोनुकूल कोई भी विषय व्यक्त किया जा सकता है जबकि सही बात यह है कि नवीन कथ्य नवीन शैली की खोज करता है। नवीन सत्य जब अपने को प्राचीन परिपाटीबद्ध शैली में व्यक्त करने में

असमर्थ पाता है तो उसे अभिव्यक्ति के नए मार्गों की खोज करनी पड़ती है। शुक्लजी ने दूसरी भ्रामक धारणा यह पैदा की कि छायावादी आंदोलन शुद्ध विदेशी अनुकरण है विषय के रूप में (जहाँ तक रहस्यवाद का सम्बन्ध है) और शैली के रूप में भी।

'छायावाद' नाम के चक्कर में न पड़ कर उसके द्वारा अभिव्यक्त होने वाले नए जीवन और कला की वस्तुगत व्याख्या प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी। छायावाद विदेशी वस्तु नहीं है, वह शुद्ध रूप से अपने समाज के नए जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति है। इस सामाजिक जीवन की विवेचना न कर छायावाद को शुद्ध विजातीय द्रव्य मान लेना ऐतिहासिक-बोध के सदोष होने का परिचायक है। छायावाद एकाएक नहीं पैदा हो गया। उसके विकास के बीज आधुनिक काल के आरम्भ से ही विशेषतया द्विवेदी काल से लक्षित होने लगे थे। इसलिए वह हमारी पूर्ववर्ती काव्य परम्परा का ही सहज विकास था।

स्वच्छन्दतावादी समीक्षकों तथा प्रगतिशील विचारकों ने छायावाद को तत्कालीन भारतीय जीवन से सम्बद्ध करके देखा। इन सबकी दृष्टि से छायावाद एक नवीन सामाजिक चेतना का परिणाम है। पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने छायावाद की राष्ट्रीय चेतना पर विशेष बल दिया। "खेद और आश्चर्य की बात है कि हमारे कतिपय समीक्षकों ने इस अत्यन्त सीधी और सच्ची बात को भी समझने की चेष्टा नहीं की कि हमारे इस युग के साहित्य की मुख्य प्रेरणा राष्ट्रीय और सांस्कृतिक है तथा इससे भिन्न वह कुछ और हो नहीं सकती थी। राष्ट्रीयता ने हमारे समस्त जीवन को अनेक रूपों में आंदोलित कर रखा था और हमारे कवि और लेखक भी इस दुर्दमनीय प्रयास से बच नहीं सकते थे।"

वाजपेयीजी ने बड़ी दृढ़ता से स्वीकार किया कि छायावाद का अपना जीवन-दर्शन है, अपनी भाव सम्पत्ति है। यह दर्शन और भाव सम्पत्ति नए युग की देन है। इतना मानते हुए भी वाजपेयीजी ने छायावाद को परम्परा का सहज विकास न मान कर परम्परा की प्रतिक्रिया माना। द्विवेदी काल में मध्यकालीन पौराणिक धर्म-भावना और रीतिबद्ध वर्णन शैली विद्यमान थी। छायावाद द्विवेदी काल की इस प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया में उठ खड़ा हुआ। छायावाद का आरम्भ मध्यकालीन रीतिकाव्य के अत्यधिक विरोध में हुआ। न केवल रचना शैली में, वरन जीवन-दृष्टि और उसकी भावना-कल्पना में छायावाद के कवियों ने वैयक्तिक अनुभूतियों को मुख्य साधन माना था जबकि गुप्तजी के पदों में पौराणिक भावना और संस्कार तथा रीतिबद्ध वर्णन शैली का प्रभाव विद्यमान है।

प्रतिक्रिया मान लेने से ऐतिहासिक विकास को सामाजिक सापेक्षता में देखना मुश्किल हो जाता है। कोई धारा किसी धारा की प्रतिक्रिया में चल पड़ी, यह कह कर हम साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों के मूल में काम करने वाली नवयुगीन परिस्थितियों को झुठला देते हैं। जहाँ वाजपेयीजी यह मानते हैं कि छायावादी कविता में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना मुखर हुई है, वहीं उसे मध्यकालीन प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया कह कर असंगति की सृष्टि करते हैं। बाद के कुछ

नए समीक्षकों ने, विशेषतया नामवरसिंह ने, छायावाद को प्रवहमान परम्परा से ही जोड़ा है। जो भी हो, वाजपेयी ने पहली बार छायावाद के भाव वैभव, दृष्टिकोण, शिल्प कौशल की नवीन छवियों को तत्कालीन युग के परिवेश में देखा और उसकी व्याख्या करते हुए उसका प्रबल समर्थन किया। छायावाद में वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता, मानवतावादी जीवन-दर्शन तथा नवीन सौन्दर्य-बोध का स्वर है। 'नवीन काव्य में समस्त मानव अनुभूतियों की व्यापकता पूरा स्थान पा सकी।'

वाजपेयीजी ने छायावाद के सौन्दर्य का मूल्यांकन करने के लिए द्विवेदी कालीन कविता को तुलना के रूप में रखा है। यह दिखाया है कि द्विवेदी कालीन अविकसित कविता के पश्चात इतना विकसित काव्य देकर छायावाद ने हिन्दी साहित्य का स्तर बहुत ऊँचा किया। द्विवेदी कालीन कविता परिपाटी बद्ध कविता है और छायावादी कविता हर क्षेत्र में नवोन्मेष से पूर्ण अनुभूति प्रवण कविता है। "उस युग के श्रेष्ठ कवियों की रचना शैली पर विशुद्ध काव्य पद्धति के स्थान पर भाषा पद्धति की छाप देखी जा सकती है। भावना का अभिव्यंजना या अभिन्न सम्बन्ध न स्थापित होने के कारण उक्तियों का चमत्कार और मुक्तक प्रणाली की अन्य विशेषताएँ इस युग की कविता शैली के साथ लगी रह गई हैं। छन्दों के व्यवहार में या तो संस्कृत छन्दों का प्राधान्य है या हिन्दी के पुराने छन्दों का। अलंकार-योजना में प्राचीन क्रमागत पद्धति का प्रभाव स्पष्ट है। नई कल्पना का सम्बन्ध नए वस्तु जगत और कवि की नवीन जीवन-दृष्टि से होता है पर उसका सम्पूर्ण विकास द्विवेदी युग के काव्य में नहीं हो पाया।"

वाजपेयीजी ने छायावाद के सम्बन्ध में अन्य पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भाव शैली और दृष्टिकोण के पार्थक्य को भी ग़लत कहा। भाव और शैली का यह पार्थक्य रीतिवादी साहित्य और द्विवेदी कालीन साहित्य दोनों में है किन्तु छायावाद में शैली और भाव का बड़ा अनुस्यूत सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। छायावाद में अनुभूति, दर्शन और शैली तीनों का संयुक्त सम्बन्ध था। अर्थात परिवर्तित जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए ही नवीन शैली का आविष्कार हुआ।

वाजपेयीजी ने इस प्रकार छायावाद की अनेक मूलभूत विशेषताओं को उद्घाटित कर उस पर नए ढंग से विचार करने की परम्परा का सूत्रपात किया किन्तु कुछ बातों में वाजपेयीजी स्पष्ट नहीं हो सके और कुछ बातों को पकड़ नहीं सके। वे एक ओर छायावादी काव्य को वैयक्तिक अनुभूतियों से प्रेरित काव्य मानते हैं, दूसरी ओर उसे राष्ट्रीय चेतना से युक्त काव्य मानते हैं, "विश्व साहित्य में भी श्रेष्ठ किन्तु कोरी राष्ट्रीय कविताओं की संख्या थोड़ी ही है। नवयुग के कवियों ने इस तथ्य को स्वभावतः समझ लिया था और इसीलिए उनकी रचनाएँ राष्ट्रीय न रहकर अधिक-राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भूमियों पर पहुँची थीं।" पता नहीं 'अधिक राष्ट्रीय' शब्द का क्या अर्थ है? व्यक्ति गत अनुभूति और राष्ट्रीय चेतना दोनों को वाजपेयीजी ने एक ही काव्य में कैसे मान लिया और मान भी लिया तो उसका स्वरूप स्पष्ट नहीं किया। छायावाद की व्यक्तिगत अनुभूति राष्ट्रीय

चेतना से किस प्रकार सम्बद्ध की जाए? इसका उत्तर वाजपेयीजी को देना था। इसी प्रसंग में इस बात की ओर भी संकेत करना आवश्यक है कि वाजपेयीजी ने छायावाद की व्यक्तिगत चेतना का सामाजिक विश्लेषण नहीं किया। राष्ट्रीय चेतना की बातें तो बहुत की (यद्यपि वह छायावाद में कैसे मुखर हुई है, इसका स्पष्ट निर्देश नहीं कर सके) किन्तु नवीन पूँजीवादी व्यवस्था की पृष्ठभूमि पर जो नई चेतना फूटी (जिसे 'व्यक्तिवादी चेतना' कहा गया) उसे वाजपेयीजी नहीं देख सके।

वाजपेयीजी ने छायावाद को राष्ट्रीय चेतना का स्वर तो माना किन्तु वास्तव में जहाँ यह राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना छायावाद में प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से व्यक्त हुई है वहाँ इन्होंने आध्यात्मिक स्वर की तलाश की। महावीर प्रसाद द्विवेदी, मुकुटधर पाण्डेय, रामचन्द्र शुक्ल सभी ने छायावाद में अपने-अपने ढंग से अध्यात्मवाद का स्वर खोजा। हाँ, इन्होंने छायावादी अध्यात्म को मानवतावाद और सामाजिक जीवन से सम्बद्ध किया। "नई छायावादी कविता का भी एक आध्यात्मिक पक्ष है परन्तु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। उसे हम बीसवीं शताब्दी की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं। आधुनिक परिवर्तनशील समाज व्यवस्था और विचार-जगत में छायावाद भारतीय आध्यात्मिकता की नवीन परिस्थिति के अनुरूप स्थापना करता है। जिस प्रकार मध्ययुग का जीवन भक्ति-काव्य में व्यक्त हुआ उसी प्रकार आधुनिक जीवन की अभिव्यक्ति इस काव्य में हो रही है। अंतर तो इतना ही है कि पूर्ववर्ती भक्ति-काव्य में जीवन के लौकिक और व्यावहारिक पहलुओं को गौण स्थान देकर उनकी उपेक्षा की गई थी वहाँ छायावादी काव्य, सांस्कृतिक सौन्दर्य और सामाजिक जीवन-परिस्थितियों से ही मुख्यतः अनुप्राणित है। इस दृष्टि से यह पूर्ववर्ती भक्ति-काव्य की प्रकृति-निरपेक्षता और संसार मिथ्या की सैद्धान्तिक प्रतिक्रियाओं का भी विरोधी है।"

वाजपेयीजी ने छायावाद में अध्यात्म तो स्वीकारा किन्तु उसे नवयुगीन परिवेश में ही देखा। जिन लोगों ने यह भ्राँत धारणा बना रखी थी कि छायावादी रहस्यवाद में मध्ययुगीन सन्तों की छाया है या उसका प्रेमकाव्य रीतिकाव्य का नए रूप में पुनरावर्तन है, वाजपेयी का यह स्पष्ट मत उन लोगों की आँख खोलने के लिए पर्याप्त था। यह दो युगों का अंतर है। एक युग दूसरे युग की छाया कैसे हो सकता है, उसका विकसित रूप भले ही हो। इसी विचार श्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए वाजपेयीजी ने यह भी कहा कि छायावादी काव्य में भक्ति काल की काव्यधारा की तरह किसी क्रमागत साम्प्रदायिकता या साधना-परिपाटी का अनुगमन नहीं किया। 'दैन्य से पीड़ित और प्रताड़ित तथा भोगैश्वर्य से प्रसक्त और परिवेष्ठित व्यक्ति, समुदाय, देश, राष्ट्र या सृष्टिचक्र के विभेदों में आध्यात्मवाद नहीं जा सका। समय और समाज को आंदोलित करने वाली शक्तियों का आकलन उसमें कम ही है। छायावाद काव्य-सरणी इन आध्यात्मवादी सीमा-निर्देशों से अबद्ध नहीं है, वह भावना के क्षेत्र में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध स्वीकार नहीं करती।"

वाजपेयीजी ने छायावाद के स्वरूप को समझने में बड़ी सहायता दी लेकिन वे भी आध्यात्मवाद को किसी-न-किसी अर्थ में पकड़े रहे। इसीलिए वे इस आध्यात्मवाद को नवीन सामाजिक परिस्थितियों की सापेक्षता में देखते हुए एक भ्रामक बात कह गए कि छायावाद का आध्यात्मिक पक्ष बीसवीं शताब्दी की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया है। हम आगे देखेंगे कि छायावाद का अध्यात्म मूलतः प्रतीकों में व्यक्त अपनी राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना ही है जो वैज्ञानिक युग के आने से निर्मित हो रही थी, उसकी प्रतिक्रिया में नहीं। इस आध्यात्मवादी धारणा के धोखे में वाजपेयीजी जैसे समर्थ और नवदृष्टि सम्पन्न आलोचक भी आ गए तो यह असहज नहीं था। छायावादी कविता भी इसके लिए कम उत्तरदायी नहीं है। छायावादी कविता में जो अज्ञात, अरूप आदि का प्रतीकात्मक प्रयोग है वह तो ठीक है किन्तु कहीं-कहीं इन कवियों ने अपनी सांसारिक अनुभूतियों वाली कविताओं में भी आध्यात्मिक रहस्य का आभास देने का प्रयत्न किया है। आध्यात्मवाद भारतीय जीवन में ऐसा उच्च जीवन-मूल्य समझा जाता रहा है कि घोर सांसारिक वासनाओं वाले रीतिकालीन कवियों ने भी अपनी श्रृंगारिक कविताओं में राधिका-कन्हाई का नाम लेकर दोहरा शिकार खेलना चाहा। राधिका-कृष्ण तो यहाँ मात्र सांसारिक नायक-नायिका हैं फिर भी उनके स्थान पर किसी लोकनायक का नाम क्यों नहीं लिया? इसलिए कि--

'आगे के सुकवि रीझिहें तो कविताई
न तो राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है।'

छायावाद जैसे मानवीय आंदोलन में भी कहीं तो उसकी सूक्ष्म प्रवृत्ति और प्रतीकात्मकता के कारण आध्यात्मिक आभास खोज लिया गया और कहीं तो कवियों ने आध्यात्मिक रंग चढ़ाने के लिए प्रयत्न भी किए क्योंकि अध्यात्मदर्शन अपने यहाँ काफ़ी ऊँची चीज़ मानी जाती रही है। प्रसाद और महादेवी ने अपने निबन्धों में भी छायावाद की कविताओं के बारे में लिखते हुए ऐसी शैली अपनाई जिससे आध्यात्मिक दर्शन का भी आभास पाना असम्भव नहीं हो सका।

प्रसादजी ने 'आँसू' के प्रथम संस्करण में 'अँचल में दीप छिपाए' लिखा किन्तु दूसरे संस्करण में 'अंतर में दीप छिपाए' लिखकर इसी आध्यात्मिकता के धोखे में डालना चाहा। 'एक तारा' और 'नौका विहार' जैसी उत्तम चित्रात्मक कविताओं के अंत में पैबन्द की तरह आत्म-दर्शन और जग-दर्शन की बात जोड़कर पन्तजी ने इसी आध्यात्मिक गरिमा से कविता को मण्डित करना चाहा। वह मानवीय भावनाओं के कवि होकर भी जैसे कहीं इस बात से आशंकित थे कि बिना अध्यात्म दर्शन का पुट दिए कविता उच्च कोटि की नहीं होती है।

छायावाद व्यक्तिवादी अनुभूतियों का काव्य है, उसमें यथार्थ जीवन के स्थान पर कल्पना वैभव अधिक है, जीवन की क्रान्तिकारी चेतना के स्थान पर जीवन को मधुचर्या प्रधान है, आदि दोषारोपण छायावाद पर किए जाते हैं और उसे हीन काव्य ठहराया जाता है किन्तु छायावाद के व्यक्तिवाद, कल्पना-विलास और मधुचर्या के पीछे जीवन का जो क्रान्तिकारी दृष्टिकोण

छिपा है, उसे पहचानने में भूल नहीं करनी चाहिए। छायावाद एक क्रान्तिकारी काव्य है जिसने परिपाटीबद्ध रसज्ञता, परिपाटीबद्ध शिल्प, परिवाटीबद्ध दृष्टि के स्थान पर नूतन रसज्ञता, नूतन शिल्प और नूतन जीवन-दृष्टि का निर्माण किया। ऐसा सम्भव इसीलिए हुआ कि उसने आधुनिक काल के बदले हुए जीवन को देखा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, शिवदान सिंह चौहान और बाद में अन्य विचारकों ने छायावाद के व्यक्तिवाद को बहुत ऊँची भूमिका पर प्रतिष्ठित किया। यह व्यक्तिवाद औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप निर्मित होने वाले पूँजीवादी समाज की नवीन चेतना है। यह चेतना तत्कालीन सामाजिक चेतना के विरोध में नहीं बल्कि सामन्ती रूढ़ियों और 'टाइप' के विरोध में खड़ी हुई। सामन्तवादी वर्ग व्यवस्था में जीवन और साहित्य में लीकें बन गई थीं। रूढ़ियाँ और अँधी परिपाटियाँ बन गई थीं, हर आने वाला उन्हीं लीकों पर चलता था। व्यक्तित्व को, दृष्टि को अलग ढंग से विकास करने की गुंजाइश नहीं थी। यही कारण है कि सामंतवादी वर्ग-व्यवस्था के 'पैटर्न' में कसी हुई रीतिवादी कविता में अद्‌भुत एकरसता और उबाने वाली भावगत, शिल्पगत एकरूपता लक्षित होती है।

व्यक्तिवाद सामन्ती बन्धन के पश्चात जीवन के लिए एक नया उल्लास लेकर आया। वैज्ञानिक शोधों के कारण दिन-दिन औद्योगिक विकास होता गया और राजनैतिक तथा आर्थिक शक्तियाँ सामन्त वर्ग के हाथ से निकल कर व्यवसायी वर्ग के हाथ में आने लगीं। वैज्ञानिक साधनों के आविष्कार और उपयोग से नागरिक सभ्यता बढ़ती गई। लोग गाँवों की ओर से शहरों में कल-कारख़ानों में काम करने के लिए आने लगे। इस प्रकार जात-पात और अनेक परम्पराओं के बन्धन टूटते गए। उच्च कर्म उच्च जातियों के लिए ही है और निम्न जातियाँ केवल साधारण और हलका कार्य करने के लिए ही हैं, इन दोनों वर्गों के उच्च और निम्न गुण-धर्म ईश्वर प्रदत्त हैं, इस प्रकार के दावे मिथ्या सिद्ध होने लगे। मनुष्य मनुष्य है, वह स्वभावतः सदाचारी है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने उत्थान के लिए मुक्त प्रयास करने का अधिकार है। 'गाडविन ने निस्संदिग्ध घोषणा की कि प्रत्येक मनुष्य स्वभावतः सदाचारी है। अगर सभी क़ानून रद्द कर दिए जाएँ तो मनुष्य की बुद्धि और चरित्र में निस्संदेह अभूतपूर्व उन्नति होगी।

वैयक्तिक स्वाधीनता मूलतः व्यावसायिक और व्यापारिक प्रतियोगिता की भावना लेकर उत्पन्न हुई किन्तु वह जीवन के हर क्षेत्र में- नागरिकता में, सदाचार में, नैतिकता में, साहित्य और राजनीति में फैल गई। इस नवीन दृष्टि और चेतना को लेकर रोमांटिक साहित्य उठ खड़ा हुआ और बड़े ही उन्मेष और शक्ति से एक ओर जीवन और साहित्य की रुद्ध प्रवृत्तियों को तोड़ने लगा और लोकानुभूति को लेकर नई सृष्टि करने लगा। इस वैयक्तिक स्वाधीनता के स्वर ने सारे सामन्तकालीन सम्बन्धों को झकझोर दिया। बड़ी निर्दयता से उसकी सारी रूढ़ि-ग्रन्थियों को तोड़ दिया। इस प्रकार इसने इतिहास में एक बड़ा ही क्रान्तिकारी भूमिका अदा की और मनुष्य के चित्त में अपार उल्लास पैदा किया। ❑

(क्रमशः)



अभिनय और नृत्य की अप्रतिम माला

'नागिन' के बाद वैजयंतीमाला देश की पहली 'डांसिंग स्टार' तो बन ही गईं। साथ ही वह दक्षिण से हिन्दी में आकर ऐसी पहली नायिका भी बनीं, जिन्हें पूरे देश में एक साथ व्यापक लोकप्रियता मिली। हिन्दी फ़िल्मों में शास्त्रीय नृत्य को महत्व देने का प्रचलन भी 'नागिन' से आरम्भ हुआ।



प्रदीप सरदाना
ई-मेल : pradeepsardana29@gmail.com

वैजयंतीमाला एक ऐसी अभिनेत्री रही हैं, जिन्होंने अपने शानदार अभिनय और दिलकश नृत्य से सभी को मंत्रमुग्ध कर दिया था। सिनेमा में वैजयंतीमाला ने कुछ ऐसी नई परम्पराएँ भी शुरू कीं, जिस कारण उन्हें आज भी शिद्दत से याद किया जाता है। हालाँकि अपने दौर की यह अप्रतिम तारिका पिछले कुछ बरसों से लगभग गुमनामी में जी रही थीं लेकिन पिछले दिनों भारत सरकार ने उन्हें पदमविभूषण सम्मान देने की घोषणा की तो 90 वर्षीय वैजयंतीमाला यकायक फिर सुर्ख़ियों में आ गईं।

वैजयंतीमाला के फ़िल्म करियर को देखें तो वह 1950 से 1970 के 20 बरसों में सिमट कर रह जाता है। पिछले क़रीब 54 बरसों से उन्होंने कोई फ़िल्म नहीं की। अब तो कई बरसों से वह सिनेमा ही नहीं, सिने समारोहों से भी दूर रहकर चेन्नई में परिवार के साथ एकांतमय जीवन बिता रही हैं लेकिन इतने बरसों बाद भी उन्हें न दर्शक भूले हैं और न भारत सरकार। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उनके करियर में कई ख़ूबसूरत फ़िल्में हैं, जिनमें कुछ तो कालजयी बनकर भारतीय सिनेमा का सुनहरा इतिहास बन चुकी हैं। 'नागिन', 'देवदास', 'गंगा जमुना', 'मधुमती', 'साधना', 'नया दौर', 'संगम', 'लीडर', 'आम्रपाली', 'ज्वैल थीफ़', 'सूरज', 'प्रिंस', 'प्यार ही प्यार' और 'गँवार' जैसी कई फ़िल्में इस बात की बानगी हैं।

उन्होंने चाहे फ़िल्मों से दूरी बना ली लेकिन नृत्य

और समाज सेवा को बरक़रार रखा। करीब चार साल पहले 86 बरस की आयु में उन्होंने अपने भरतनाट्यम नृत्य की शानदार प्रस्तुति कर सभी को हैरत में डाल दिया था। अभी भी वह चाहे पहले की तरह अपनी बड़ी नृत्य प्रस्तुति नहीं करतीं लेकिन भाव, अभिनय और मुद्रा के माध्यम से नृत्य कर, इस उम्र में भी इस कला को समर्पित हैं।

13 अगस्त 1933 को चेन्नई के निकट नगर ट्रिप्लीकेन में जन्मी वैजयंतीमाला को शास्त्रीय नृत्य का शौक बचपन से था। उनकी माँ वसुंधरा देवी भी भरतनाट्यम की एक बड़ी नृत्यांगना होने के साथ-साथ तमिल फ़िल्मों की अभिनेत्री भी थीं। उधर पिता एमडी रमण को भी संगीत से प्रेम था। इसीलिए माता-पिता ने वैजयंती को भी अल्प आयु में ही भरतनाट्यम सीखाना शुरू कर दिया था। वैजयंती कम उम्र में ही नृत्य के इतने गुण सीख गई थीं कि सिर्फ़ पाँच बरस की आयु में वह विदेश में अपनी प्रथम प्रस्तुति कर आईं थीं।

फ़िल्मों में आगमन

धीरे-धीरे वैजयंतीमाला के नृत्य की चर्चा सर्वत्र होने लगी। जब वह 15 साल की हुईं तो उन्हें उस दौर की प्रसिद्ध फ़िल्म निर्माण संस्था एवीएम और निर्देशक एमवी रमण ने, अपनी तमिल फ़िल्म 'वझकाई' में नायिका बना दिया। सन् 1949 में जब यह फ़िल्म प्रदर्शित हुई तो इसे अच्छी सफलता मिली। अगले बरस यही फ़िल्म तेलुगु में भी 'जीवितम' के नाम से प्रदर्शित हुई। इससे वैजयंती ने एक साथ तमिल और तेलुगू फ़िल्मों में अपना आगमन कर लिया। इसके बाद 1951 में एमवी रमण ने ही वैजयंती को लेकर हिन्दी में भी एक फ़िल्म 'बहार' बनाई। जिसमें उनके नायक थे करन दीवान।

वैजयंतीमाला से पहले दक्षिण से हिन्दी सिनेमा में आने के प्रयास कुछ और अभिनेत्रियों ने भी किए थे लेकिन उनके संवादों और अंदाज़ में दक्षिण भाषा की छाप होने के कारण उन्हें सफलता नहीं मिली। वैजयंती ने इस बात को समझ लिया था। इसलिए उन्होंने 'बहार' के निर्माण के दौरान ही हिन्दी प्रचारिणी सभा, मद्रास से हिन्दी सीखना शुरू कर दिया था जिसका उन्हें अच्छा लाभ मिला। सन् 1954 में प्रदशित फ़िल्म 'नागिन' ने तो वैजयंतीमाला की ही नहीं, हिन्दी सिनेमा की भी तस्वीर बदल दी। इस फ़िल्म की अपार सफलता से वैजयंतीमाला और प्रदीप कुमार की सुपर हिट जोड़ी बन गई।

फ़िल्मकार एस. मुखर्जी और निर्देशक नंदलाल जसवंतलाल की फ़िल्म 'नागिन' की सफलता में वैजयंतीमाला के अभिनय और





नृत्य के साथ, संगीत का भी बड़ा योगदान रहा। फ़िल्म के सभी 13 गीत हिट थे। हेमंत कुमार के संगीत निर्देशन में तब उनके सहायक रहे कल्याणजी और रवि ने सपेरे की बीन की तो ऐसी रचना की, जिसकी धूम आज तक क़ायम है।

'नागिन' के बाद वैजयंतीमाला देश की पहली 'डांसिंग स्टार' तो बन ही गईं। साथ ही वह दक्षिण से हिन्दी में आकर ऐसी पहली नायिका भी बनीं, जिन्हें पूरे देश में एक साथ व्यापक लोकप्रियता मिली। हिन्दी फ़िल्मों में शास्त्रीय नृत्य को महत्व देने का प्रचलन भी 'नागिन' से आरम्भ हुआ।

वैजयंतीमाला ने हिन्दी सिनेमा में बड़ी सफलता पाने के बाद कई बड़े फ़िल्मकारों के साथ उस दौर के लगभग सभी बड़े नायकों के साथ काम किया। उस दौर में यूँ कामिनी कौशल, नर्गिस, मधुबाला और मीना कुमारी जैसी नायिकाओं का बोलबाला था। फिर भी फ़िल्म के नायक का इतना वर्चस्व था कि बड़ी से बड़ी नायिका को भी कितनी बार नायक के वर्चस्व को स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ता था लेकिन वैजयंतीमाला ने अपने अभिनय, अंदाज़ और नृत्य से फ़िल्मकारों में अपना वर्चस्व बना लिया। इससे वह अपनी शर्तों के साथ काम करने लगीं।

वैजयंतीमाला ने जब 'नागिन' से हिन्दी सिनेमा में पहली सफलता पाई तब जहाँ एक ओर दिलीप कुमार, राज कपूर और देव आनंद का दौर था वहाँ कुमार अभिनेताओं का भी बोलबाला था। वैजयंतीमाला ने दिलीप कुमार, राज कपूर और देव आनंद के साथ तो काम किया ही, साथ ही अपने करियर में प्रदीप कुमार, अशोक कुमार, किशोर कुमार, राजेन्द्र कुमार, मनोज कुमार, संजीव कुमार और उत्तम कुमार के साथ भी फ़िल्में कीं। इनके अलावा शम्मी कपूर, सुनील दत्त, धर्मेन्द्र और बलराज साहनी के साथ भी उनकी फ़िल्में हैं। सबसे ज़्यादा लोकप्रियता और सफलता इन्हें दिलीप कुमार के साथ मिली।

दिलीप कुमार के साथ वैजयंतीमाला को सबसे पहले बिमल राय सरीखे फ़िल्मकार ने 'देवदास' (1955) में लिया। इस फ़िल्म की सफलता के बाद बीआर चोपड़ा ने भी 'नया दौर' में इन दोनों को लेकर सफलता का नया इतिहास लिख दिया। फिर जब बिमल राय ने 1958 में दिलीप-वैजयंती को अपनी एक और फ़िल्म 'मधुमती' में दोहराया

तो वैजयंतीमाला भारतीय सिनेमा की शिखर नायिका बन गईं। इसके बाद 'पैग़ाम', 'गंगा जमुना', 'लीडर' और संघर्ष' ने तो इस जोड़ी को अमर बना दिया।

राज कपूर और वैजयंतीमाला

वैजयंतीमाला के साथ यदि राज कपूर और उनकी फ़िल्म की बात न कि जाए तो यह लेख अधूरा रहेगा। हालांकि इस जोड़ी ने साथ में सिर्फ़ दो फ़िल्में की थीं। एक 1961 में 'नज़राना' और दूसरी 1964 में 'संगम'। राज कपूर जैसे दिग्गज फ़िल्मकार को भी 'संगम' के लिए 'हाँ' कहने में, वैजयंतीमाला ने काफ़ी समय लगा दिया था। राज कपूर ने वैजयंती को जब 'संगम' की नायिका राधा बनने का प्रस्ताव दिया तो उन्होंने कहा मैं सोचकर बताऊँगी। राज कपूर कुछ दिन बाद फिर से पूछा तो वैजयंती का जवाब था कुछ समय दीजिये बताती हूँ। जब काफी दिनों तक वैजयंती ने जवाब नहीं दिया तो राज कपूर ने उन्हें मद्रास में तार भेजकर अनोखे अंदाज़ में पूछा- बोल राधा बोल संगम होगा की नहीं। वैजयंतीमाला ने ये तार देख उन्हें उनके ही अंदाज में जवाब दिया- होगा, होगा, होगा। राज कपूर अपनी नायिका का यह अंदाज देख बहुत खुश हुए और बाद में यही संवाद, 'संगम' फ़िल्म के लोकप्रिय गीत



का अहम हिस्सा भी बना।

'संगम' राज कपूर की पहली रंगीन फ़िल्म तो थी ही, साथ ही उनकी यह पहली फ़िल्म थी जिसकी शूटिंग उन्होंने विदेश में भी की। विदेश यात्रा की शूटिंग के दौरान राज कपूर और वैजयंतीमाला में घनिष्ठता बढ़ने लगी। उधर एक दिन वैजयंतीमाला की तबीयत ख़राब हुई तो राज कपूर ने अपने पारिवारिक डॉक्टर चमनलाल बाली को उन्हें देखने के लिए भेजा। वैजयंती डॉ. बाली के व्यवहार और शालीनता से इतनी प्रभावित हुईं कि दोनों में प्रेम हो गया जिससे दोनों ने 1968 में शादी कर ली।

इस बरस वैजयंतीमाला बाली को जहां देश का दूसरा सर्वोच्च नागरिक सम्मान मिला है वहाँ इन्हें पदमश्री 1968 में ही मिल गया था। साथ ही 1982 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से भी इन्हें नवाज़ा गया। इसके अलावा वैजयंतीमाला को पाँच फ़िल्मफ़ेयर पुरस्कार भी मिले। हालाँकि इन्हें जब 1955 में 'देवदास' के लिए सर्वश्रेष्ठ सहायक अभिनेत्री का पहला फ़िल्मफ़ेयर मिला तो इन्होंने उसे इसलिए नहीं लिया कि 'देवदास' में वह सहायक अभिनेत्री नहीं हैं, पारो और चन्द्रमुखी दोनों ही मुख्य नायिका हैं लेकिन इसके बाद उन्हें 'साधना' (1958), 'गंगा जमुना'(1961) और 'संगम' (1964) के लिए तीन बार सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री और 1996 में जीवन पर्यंत उपलब्धियों के लिए भी फ़िल्मफ़ेयर पुरस्कार मिला।

यह दिग्गज अभिनेत्री कला के साथ समाज सेवा में यूँ तो पहले से ही जुट गईं थीं लेकिन 1984 में राजनीति में आकर यह चेन्नई दक्षिण की संसदीय सीट से चुनाव लड़कर लोकसभा पहुँचीं। दूसरी बार भी वह 1989 में यहीं से विजयी रहीं लेकिन 1993 में वह राज्यसभा से चुनकर 1999 तक इस सदन की सदस्या रहीं। ❑



आदिवासी लोक नृत्य

'करमा' का सांस्कृतिक विवेचन

'करमा' में आदिवासियों का सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन देखा जा सकता है। अगर उनके आर्थिक पक्ष की बात करें तो आर्थिक सुरक्षा के नाम पर कोई बचत नहीं रहती। वह जितना ज़रूरत है, उतना ही मेहनत करते हैं। उनके रहन-सहन को देखें तो उनके पास एक मड़ैया होती है जिसमें एक चारपाई, मचिया, घड़ा, ओखली, मूसर और मिट्टी के बने एक-दो पात्र होते हैं। उनमें से जो सम्पन्न होते हैं वह घर बना लेते हैं। उनके घर में आँगन ज़रूर होता है। आँगन के चारों ओर ऊँचे खपरैल के छाए मकान होते हैं।

कला मानव की सहचरी है और कविता जीवन की आलोचना। कला-सापेक्ष जीवन ही सुखी और सार्थक जीवन है। प्रारम्भ से ही मानव ने कला को जीवन जीने का आधार बनाया। मनुष्य ने जीवन की शुरुआत ही कला और संगीत से की। चौसठों कलाओं में संगीत-कला का अपना विशिष्ट महत्व है। आज भी शिशु के जन्म लेते ही बधाइयाँ बजने लगती हैं, संगीत के स्वर मुखरित हो उठते हैं और पाँव अपने-आप थिरक उठते हैं। इससे स्पष्ट है कि संगीत की बड़ी व्याप्ति है।

'करमा' का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। भारत में जहाँ भी आदिवासी समाज रहता है वह थोड़ा-बहुत हेर-फेर के साथ 'करमा' नाचता और गाता है। विंध्य क्षेत्र को 'करमा का हृदय स्थल' कहा जाता है क्योंकि यह आदिवासी बहुलता वाला क्षेत्र है।

करमा 'क्' धातु से बना है जो करने का भावबोधक है। 'कर्म', 'काम', 'कर्मफल', 'भाग्य' इसका प्राप्य है। क्रिया-कर्म को छोड़कर मनुष्य सुख नहीं प्राप्त कर सकता।

आदिवासी समाज तो पूरा कर्म के सिद्धांत पर ही आधारित है। वह रोज़ कुआँ खोदता है और रोज़ पानी पीता है। वह बिना फल की चिन्ता किए कर्म करता है। दिनभर की मेहनत के बाद जो भी फल-फूल, साग-पात मिला उसको खाकर अपनी राम मड़ैया में सोता है।



अखिलेश कुमार मौर्य
ई-मेल : akhileshutsav298@gmail.com

'करमा' संगीत, नृत्य और मौखिक साहित्य तीनों के अंतर्गत आता है। सदियों से मौखिक परम्परा में संचरित करमा पर विविध परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

'करमा' आदिवासियों के देवता हैं, करमा उनकी देवी भी हैं। यह ऋतु अथवा फ़सल गीत है। भाद्रपद में फ़सल बो दिए जाने के बाद अनन्त चतुर्दशी के अवसर पर मादक चाँदनी रात में करमा का चौबीस घण्टे का आयोजन होता है। फिर, होली के अवसर पर रबी की फ़सल तैयार होने पर, ख़ुशी में आदिवासी समाज झूम उठता है। पहले में पुरुषार्थ फले, इसलिए करमा किया जाता है, तो दूसरे में पुरुषार्थ फला, फ़सल उगी, इसलिए करमा किया जाता है। कर्म की अवधारणा उसका उत्प्रेरक तत्त्व है। इसीलिए उसका नाम 'करमा' रखा गया-

'तेनूवाँ क पतवा तोरतऽ गरि गल कंटवा रेऽऽऽ
चिलकतऽ घमवाँऽऽऽ
नाहीं मिले छउवाँ रेऽऽऽ
पसीनवाँ मेंऽ भींजल चोलियाऽऽऽ...
देहियाँ में चिपकल जाला रेऽऽऽ
मेझरी कऽ रोटियाऽऽऽ...।'

अर्थात् किशोरी कहती है कि तेंदू का पत्ता तोड़ने गई तो काँटा गड़ गया। उस समय धूप चिलक रही थी, और वहाँ कहीं छाया नहीं थी। गर्मी के मारे चोली पसीने से तर-बतर हो गई थी मेझरी (निकृष्ट कोटि का अनाज) की रोटी दाँत में चिपक रही थी, उसे खाते मन बिदक जाता था। (तो आओ हम सब करमा पूजें) इस गीत में कर्म को ही पूजा माना गया है। कर्म के मायने वही पुरुषार्थ।

करमा का जन्म कब, कहाँ, कैसे हुआ? इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है किन्तु करमा के बारे में आदिवासियों में जो कथा प्रचलित है, वह इस प्रकार है–



सोनभद्र ज़िला में ' करमा ' नृत्य प्रस्तुत करते आदिवासी कलाकार



करमा नृत्य करने वाले आदिवासियों का घर

एक राजा के चार लड़के थे। तीन बड़े थे और एक छोटा। छोटा भौजाई के ताने (मेहने) का शिकार होकर मारा-मारा फिरने लगा, किन्तु सत्यनिष्ठ और ईमानदार होने के कारण उसका सर्वत्र सम्मान भी होने लगा। उसे धन की कमी न थी, पर वह धन के प्रति अनासक्त था। उसके इस गुण से प्रसन्न होकर एक राजा ने उससे अपनी कन्या का विवाह कर दिया। वह सुखपूर्वक रहने लगा और बारह वर्ष का समय देखते-ही-देखते बीत गया।

इधर तीनों बड़े भाइयों की दशा दिन-प्रतिदिन ख़राब होने लगी। वे दाने-दाने को मोहताज हो गए। छोटे भाई ने राजकुमार के रूप में अपनी पत्नी के साथ अपने घर की ओर प्रस्थान किया तो गाँव के लोगों ने उसे दूर से ही देखकर सोचा, कोई राजा चढ़ाई करने आ रहा है किन्तु जब वह निकट आ गया तो गाँव के लोग उसे पहचान कर आनन्द-विभोर हो गए। सम्पन्नता और विपन्नता के इस मिलन को ध्यान में रखकर नृत्य और गीत का वृहद आयोजन किया गया जिसे 'करमा' नाम दिया गया। 'करमा' इसलिए कि छोटा भाई कर्मनिष्ठ था, उसने अपने अध्यवसाय, त्याग, लगन और ईमानदारी के बल पर यश कमाया। कर्मदेव (पुरुषार्थ) की पूजा के कारण ही उसे यश प्राप्त हुआ था। वह कर्म एकादशी का दिन था। इसलिए इस एकादशी सहित विजयदशमी, दीपावली, जीवित पुत्रिका, होली और अनन्त चतुर्दशी पर भी करमा पर्व मनाने की प्रथा चल पड़ी।

इस कहानी से यह पता चलता है कि आदिवासी धर्म-संस्कृति में भाग्य नहीं, कर्म को प्रमुखता दी गई है जिसके फलस्वरूप आज भी आदिवासी समाज कर्म प्रधान समाज है। वह नित्य अपने काम में रत रहता है।

आदिवासियों का एक अलग संसार है। विंध्य क्षेत्र में रहने वाली प्रमुख जनजातियाँ हैं- कोल, कोरवा, पठारी, गोंड, खरवार, पनिका, चेरो, घसिया। ये सभी जनजातियाँ करमा करती हैं। करमा का मुख्य वाद्ययन्त्र

'मादल' है जिसे वे ख़ुद ही बना लेते हैं। सहायक वाद्ययन्त्र में डफला, बाँसुरी, शहनाई, निशान है और कभी-कभी ढोल का भी प्रयोग कर लिया जाता है। सांस्कृतिक और धार्मिक अनुष्ठान से बने करमा गीत जनमानस में रचे-बसे हुए हैं। 'मादल' की आवाज़ में इतनी मादकता है कि व्यक्ति का ध्यान आकृष्ट हो जाता है। वृत्त अथवा अर्धवृत्त बनाकर चाँदनी रात में किसी पेड़ के नीचे नर-नारियों का दल जब झूमने लगता है तो दर्शन भी भाव-विभोर हुए बिना नहीं रह पाता है।

करमा सामूहिक नृत्य है। इसकी तैयारी महीनों की जाती है। नए कपड़े और आभूषण ख़रीदे जाते हैं। सात दिन पूर्व सप्तमी को प्रायः जयी जमाई जाती है। सात दिन तक व्रत रही स्त्रियाँ आँगन अथवा किसी शुद्ध स्थान पर जौ का बीज बोती हैं। फिर करमा के दिन कुँवारी कन्याओं के साथ पूरा गाँव किसी नदी के तट पर जाता है। वहाँ एक ही बार में कुल्हाड़ी से कन्या कदम की डाल काटती है और शीतला देवी का आह्वान करती है। देवी आती हैं और लोगों के प्रश्न का उत्तर देती हैं, पैदावार कैसी होगी? गाँव में कोई बाधा तो नहीं आएगी? पानी कैसा बरसेगा? आदि प्रश्नों का उत्तर देने के बाद वे डाल लेकर नाचते-गाते सभी गाँव के देवस्थान पर आते हैं जहाँ करमा नृत्य का आयोजन किया गया होता है। यह नृत्य बारह घंटे, चौबीस घंटे, अड़तालिस घंटे तक भी चलता रहता है और उसके अंत में बलि चढ़ाई जाती है। करमा की समाप्ति पर डाल को नदी में प्रवाहित किया जाता है और फिर सार्वजनिक भोज दिया जाता है।

लोकगीत संस्कृति का अनिवार्य अंग है। जनजातीय लोकगीत-नृत्य करमा में उसकी सर्वत्र अभिव्यक्ति हुई है। उनके अधिकतर त्यौहार इसके बिना पूरे नहीं होते। मिट्टी के बर्तनों, लकड़ी का सामान, दैनिक जीवन में उपयोग वाली वस्तुओं पर भी करमा नृत्य के चित्र मिलते हैं। प्रागैतिहासिक काल से लेकर अब तक इसकी एक लम्बी परम्परा रही है, जो अब जंगलों की कटाई, औद्योगीकरण के कारण प्रभावित हो रही है। अब मादल की जगह चिमनियों के सायरन, करमा गीत की जगह सिनेमा के गाने सुनाई दे रहे हैं। इनकी भी अभिव्यक्ति करमा में हुई है-

'मुरली मधुर रोवऽ लीन होऽऽऽ
किया देके किसुना जी गइया हिंहिकरनीऽऽऽ
किया देके रानी हिंहिकारे होऽऽऽ
लेवरु देके किसुना जी गइया हिंहिका रेऽऽऽ
नूना देके रानी हिंहिकारे होऽऽऽ
मुरली मधुर रोवऽ लीन होऽऽऽ।'



वाद्ययन्त्र 'मादल' के साथ कलाकार

भाव यह है कि मुरली मधुर मधुर रो रही है, क्योंकि यहाँ अब कुछ रह नहीं गया है। नमक भी नहीं कि उसे देकर गायों को पेन्हाया जाए और बछरू छोड़कर दूध दुहा जाए। सब प्रदूषण के कट्टे-मुआरी लग गया।

प्रेम जीवन का अनिवार्य अंग है। प्रेम के बिना जीवन सूना है। करमा में प्रेम के दोनों रूप संयोग और वियोग दिखाई देते हैं। जब गाँव की लड़की तैयार होकर बाहर जाती है और उसकी नज़र लड़के से मिल जाती है-

'कनपट में किलिप लगाके फीता बांधे होऽऽऽ
रेसम के डोर सीता गाँथइ ले होऽ...
पहिर लेला सारी होऽऽ लहालोट हाँथे मुनरी हो-
सीता रोपइ लीं लहालोट होऽ...ऽ नज़रा लड़ावे होऽऽ
हाथ छैला धइले होऽऽऽ...।'

पति के परदेस जाने पर पत्नी उसकी याद में कहती है-

'अमवाँ के बगिया चारिगो नेबुइया,
तोरत नीक लागे रेड. खण्डा-टुक्का खाइके,
पेड़वा लगउले रे
खाये के दइयाँ छोड़ गल,
परदेसी रेऽ..
बेचि-बेचि लकड़ी घरवा बतउले रेऽ..
रहइ के दइयाँ छोड़ गल देस रेऽ..।'

अर्थात् आम के बाग़ में चार पेड़ नीबू के हैं। उन्हें तोड़ते अच्छा लगता है। खण्ड हुक्का खाकर उन वृक्षों को रोपा था। जब पेड़ बढ़कर बड़े हुए, उसमें फल आने का समय हुआ तो मेरे बालम परदेस चले गए। लकड़ी बेच-बेचकर घर धनवायी तो रहने के समय भी वे घर छोड़कर विदेश चले गए।

करमा में आदिवासियों का सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन देखा जा सकता है। अगर उनके आर्थिक पक्ष की बात करें तो आर्थिक सुरक्षा के नाम पर कोई बचत नहीं रहती। वह जितना ज़रूरत है, उतना ही मेहनत करते हैं। उनके रहन-सहन को देखें तो उनके पास एक मड़ैया होती है जिसमें एक चारपाई, मचिया, घड़ा, ओखली, मूसर और मिट्टी के बने एक-दो पात्र होते हैं। उनमें से जो सम्पन्न होते हैं वह घर बना लेते हैं। उनके घर में आँगन ज़रूर होता है। आँगन के चारों ओर ऊँचे खपरैल के छाए मकान होते हैं। यह प्रायः दो छत के होते हैं और पाटनदार भी, ताकि अधिक गर्मी, अधिक ठंड का असर न हो। एक पूजा गृह भी होता है जिसमें साल में एक बार बकरा, मुर्ग़ा की बलि चढ़ाई जाती है। बालक और वृद्ध अगहन के महीने में मादल, डफला बजाकर भीख माँगने निकल जाते हैं।

आदिवासी माँसाहारी और शाकाहारी दोनों होते हैं। अधिकतर आदिवासी दाल, माँड़, रोटी, सब्ज़ी, कररुआ, खेकसा, कोइना, रमदतुइनियाँ का पत्ता, चकवड़, पुरइन का साग खाते हैं। अन्न में मेझरी, महुआ, साँवा, कोदो, धान का चावल, जौ, गेहूँ, दाल में यदा-कदा खेसारी, अरहर, मसूर, मटर की खाते हैं। वे अकाल-दुकाल में सरई (साखू की फली), महुआ, फल में-तेनु, पियार, शहद खाते हैं। । आदिवासियों में शराब पीना एक सामान्य परम्परा है। शराब के अलावा नशे में भाँग, गाँजा, पान का सेवन करते हैं। करमा की पंक्तियाँ देखिए-

'मोर राजा छइला रेऽऽऽ

लेइ बिजुल डहियाऽ ठोंकावेंऽऽ
डहिया ठोंकाइ के भइले समतुला रेऽऽऽ
बेंचि-बेंचि लत्ता, खाये लगिले भांगि रेऽऽऽ।'

अर्थात् मेरा पति 'छैला' निकल गया। वह खाए-पीए मस्त रहता है। घर का सामान बेचकर भाँग, तम्बाकू, पान खा जाता है।

आदिवासियों की धर्म और अध्यात्म में गहरी आस्था होती है। उनके लिए धर्म और अध्यात्म है- श्रम, सुख-दुःख, जीवन-मरण, आनंद, प्रकृति से प्रेम। वह सुख और दुख दोनों में समान रहता है। यह जगह नैहर के समान है, एक दिन श्वसुर (ब्रह्मा) के घर जाना ही होता है, फिर चिन्ता किस बात की? करमा में इसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार है-

'माटी देहियाँ माटी मिली जानी
माटी के काया माटी मिली जानी
अइसन परान उड़ि गईन हो
मति रनियाँ रोइबा हो मति पछितइबा
ई त परान पंछी उड़ि जाई रे।'

यद्यपि ज़िन्दगी कठिन है फिर भी उसको जीना ही होगा। इस संसार से सबको एक दिन जाना है।

'कवनी नगरिया सूना कइलेऽऽऽ
जीवा माहुर भइले रेऽऽऽ
केहू त खोजत एहरी देहरीऽ
केहू त खोजत खोरिया घूमेऽऽऽ
माई खोजत एहरी, बहिन खोजत देहरी
तिरिया खोजत खोरिया घूमे रेऽऽऽ।'

करमा में भक्ति का स्वरूप दिखाई पड़ता है। शिव, कृष्ण और राम की भक्ति प्रमुखता से देखी जा सकती है। करमा की नृत्यशैली कृष्ण की रासलीला से बहुत मेल खाती है। कृष्ण वंशी बजाते हैं और आदिवासी बाँसुरी बजाता है। 'रास' जैसा अभिनय-नृत्य प्रस्तुत करती हैं, यथा---

'कवन गोरीऽ हाँऽ सेऽ?
कवन गोरी मुसुकेऽऽ?
ए तऽ बड़की त हाँसेऽऽ
मझली गोरी मुसुकेऽऽ
छोटकी त चील्ह नीयर झपटेऽऽ
श्री किसुनऽ बँसिया बजावेऽऽऽ।'

कर्म में श्री राम के जीवन का काफ़ी वर्णन मिलता है, विशेष कर वनवासी राम का। लक्ष्मण-शक्ति ही प्रसंग प्रस्तुत है–

'भइया जीवाऽऽ जाति बाऽ होऽऽऽ
कइसे भइया लछिमन जीवाऽ जाति बा होऽऽऽ'
'बायाँ हाथेऽ हनुमत जीऽ परवत उठावऽल
तब से परबत मेंऽ दीपक बारऽल।'

अर्थात् 'लक्ष्मण को शक्ति लगती है। अचेत लक्ष्मण के लिए हनुमान बूटी लाते हैं। बूटी पीते ही वे उठ बैठते हैं, सभी प्रसन्न हो जाते हैं।'

'करमा' आदिवासियों के जीवन का एक अभिन्न हिस्सा रहा है। 'करमा' में आदिवासी लोक-जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। यह उनके जीवन में सुख, शान्ति और आनंद लेकर आता है परन्तु दिनोंदिन करमा के प्रति रुझान घट रहा है। वनों का अनियंत्रित कटाव, भूख, ग़रीबी, बेरोज़गारी, विस्थापन के कारण आदिवासी प्रभावित हैं। इसका सीधा प्रभाव 'करमा' पर देखा जा सकता है। ❑

पुस्तक को क्यों पढ़ें...

इस उपन्यास में सोद्देश्यता, तारतम्यता, नूतन गति और अभिनव भंगिमा का प्रयोग किया गया है। रेलवे कॉलोनी के विस्तृत परिवेश का वर्णन किया गया है। उपन्यास रेल के गहरे अँधेरे कोनों की पड़ताल, रेल जीवन के कटु-मधु अनुभव और भुगते हुए यथार्थ की परत-दर-परत व्याख्या है।

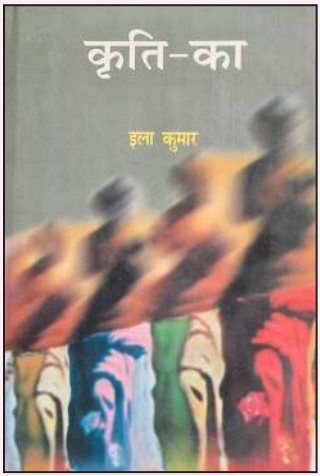
रेल जीवन की अंदरूनी दास्तान

'कृति-का' रेल की बाह्य भव्यता और विशालता को चीरते हुए ज़मीनी स्तर पर विसंगतियों एवं संकीर्णताओं के यथार्थ का दिलचस्प निरूपण का सफल प्रयास है। पुस्तक की लेखिका इला कुमार मात्र विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न ही नहीं, अद्भुत दृष्टि की भी स्वामिनी हैं जो यथार्थ का भलीभाँति अन्वेषण करती हैं तथा रेल और समाज की बनी-बनाई मानसिकता को तोड़ते हुए यथास्थिति से बाहर निकलने का संदेश देती हैं।

यथाप्रसंग अलंकृत वर्णनों द्वारा उपन्यास में सोद्देश्यता, तारतम्यता, नूतन गति और अभिनव भंगिमा प्रदान किया गया है। प्रकृति का रुचिर वर्णन तो है ही, रेलवे कॉलोनी के विस्तृत परिवेश में बहुरंगी प्रकृति की विशिष्ट नैसर्गिक छटा का मनोहारी दृश्य निपुणता से प्रकट किया गया है। लेखिका द्वारा सटीक एवं अपरम्परागत उपमाओं का प्रयोग पाठकों को प्रभावित किए बिना नहीं रह पाता। प्रकृति के आलंबन और उद्दीपन रूप में अनेक चित्र कई स्थलों पर प्रस्तुत किए गए हैं।

उपन्यास का नायक जयंत प्रतिभावान, महत्वाकांक्षी, ईमानदार, कर्मठ, परिश्रमी और रेल के प्रति वफ़ादार एवं समर्पित रेल अधिकारी है। अपनी जबावदेहियों का भलीभाँति निर्वहन करने के लिए सदैव सचेष्ट और तत्पर! लेकिन उनके सत्प्रयासों को रेल में व्याप्त विसंगतियाँ हर स्टेज पर झटका देती हैं और उनके कामकाजी जीवन को कंटिकापूर्ण बना डालती है।

नायिका नवयुवती है और शादी के बाद रेल परिसर



पुस्तक : कृति-का (उपन्यास)
लेखिका : इला कुमार
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
पृष्ठ : 104; **मूल्य :** 125 रुपये (हार्ड बाउंड)

में स्थित बड़े बंगले में अपने रेल अधिकारी पति के साथ रहती है। एईएन पति को कई दफ़ा अचानक रात में डिरेलमेन्ट आदि की स्थिति में तुरन्त साइट पर जाना पड़ता है। ऐसी विषम परिस्थिति में एक नवविवाहिता की मनोदशा का लेखिका ने अंतरंग चित्रण किया है। बड़े बंगलों में एकाकीपन का भास होना स्वाभाविक है। कृतिका उस एकाकीपन और तन्हाई को झेलती है। बाद में नायिका इस एकाकीपन का सदुपयोग रचनात्मक कार्यों में निमग्न होकर करती है तथा अपनी एक अनोखी सर्जनात्मक छवि प्रस्तुत करती है।

कृतिका शुरू में रेल प्रणाली, रेलशाही का प्रभाव, रेल कॉलोनी के जीवन आदि से पूर्णतया अनभिज्ञ थी। जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण कृतिका ने रेलवे स्टाफ़ कॉलेज की लाइब्रेरी में रेल के इतिहास, संरचना, संगठन आदि से सम्बन्धित पुस्तकों का गहन अध्ययन किया। नायिका स्थानीय आदिवासी कर्मचारियों (जो बंगले पर उनकी सेवा में तैनात रहते थे) के प्रति काफ़ी संवेदनशील है। उनके साथ संवाद से उसे रेल के बारे में जानकारियाँ मिल जाया करती हैं। कई स्थलों पर देशज भाषा का प्रयोग उपन्यास में स्थानीयता का पुट प्रदान करता है।

शादी के बाद नारी एक ज़बरदस्त अंतर्द्वंद्व में उलझती है। मायके से सम्पृक्त होना सर्वथा कठिन होता है और उतनी ही कठिनाई ससुराल के प्रति अनुरक्ति स्थापित करने में होती है। इला कुमार की निम्न पंक्तियाँ इस भाव को नारी सुलभ चेतना के साथ प्रगट करती हैं–

"शादी के बाद मायके से स्वयं को अलग करना ...वह जहाँ भी जाती है, माँ उसके मानस के साथ चलती, स्वप्न की नाईं। वह अंशतः उनके साथ ही रहती, मानो।"

"दो नावों पर सवार कृतिका का मन भँवर के बीच जा फँसा।"

उपन्यासकार का आध्यात्मिक ज्ञान सहसा जगह-जगह प्रगट होकर कथानक को गम्भीर बना देता है तथा दार्शनिकता का स्पर्श कराते हुए साधारण पृष्ठभूमि में बड़ी गूढ़ बातें कह डालती है-

'अष्टावक्र संहिता के श्लोकों का गूँज'

'योग वशिष्ठ में वर्णित तथ्य याद आते।'

"कृति उपनिषदों के वर्णित उस अतिमानव के बारे में सोचती जो एक दिन सबों को देवयान मार्ग और धूममार्ग से उन यात्राओं पर ले जाएगा जिसमें बीच चन्द्रलोक, सूर्यलोक और पूरा नक्षत्रलोक पसरा है।"

इला कुमार का ज्यामीति तथा भौतिकी का विशिष्ट ज्ञान विभिन्न दृश्यों को हुबहू तथा सूक्ष्मता के साथ उकेरने में दृष्टिगोचर होता है– "पृथ्वी के शीर्ष पर दोनों हाथ पृथ्वी के समानान्तर फैलाकर वायु के ज़ोर को भाँपती हुई।"

"वह देखती की पृथ्वी की त्रिज्या, ब्यास, केन्द्रक को सीधे मिलाने वाली आकाश की ओर उद्ग्र उठी हुई रेखा के संधि-बिन्दु पर खड़ी होकर वह स्वयं विक्टरी का संकेत चिह्न बन गई है।

उपन्यासकार फ़्लैशबैक में जाती है जो क़िस्सागोई की शैली में है और जब फ़्लैशबैक से वर्तमान में वापस लौटती है तो प्रामाणिकता की छाप छोड़ते हुए यथार्थ की व्याख्या करती है।

भाषा, कहन, कथा-विन्यास और पठनीयता की दृष्टि से उत्कृष्ट है। इला कुमार ने रेलशाही और रेल अधिकारियों के मनोविज्ञान का आँतरिक विश्लेषण तथा प्रकृति के बाह्य रूप का चित्रण पटुता से किया है। ❑

समीक्षक : प्रभात कुमार रॉय

ई-मेल : energy.adv2cm@gmail.com

पुस्तक को क्यों पढ़ें...

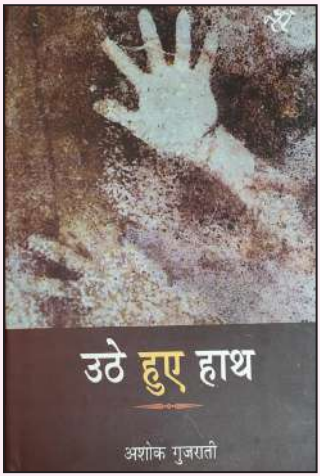
कहानियों की रवानी इन्हें रोचक बनाती है। भाषा सरल और सरस है, इसलिए आँखों से सीधे मस्तिष्क तक पहुँचती है।

सार्थक कहानियाँ

अशोक गुजराती का यह कहानी-संग्रह 'उठे हुए हाथ' विविधता लिए हुए है। अलग-अलग विषयों पर लिखी इन पन्द्रह कहानियों में नवीनता है, सम्प्रेषणीयता है और है पाठक को झकझोरती अनेक सच्चाइयाँ, जिनसे हम आए दिन रूबरू होते रहते हैं- यानी ये हमारे आस-पास की कहानियाँ हैं।

'मंदी' कहानी में अति निर्धनों से बेरोज़गार युवक अपनी तुलना कर आत्महत्या का विचार त्याग देता है। 'मिसाल' कहानी का सार यही है कि कोई भी व्यक्ति पूर्णरूपेण नायक अथवा खलनायक नहीं होता, हरेक में गुण-दुर्गुण दोनों होते हैं। दो दोस्तों की घनिष्ठता के बीच फँसी नायिका 'हजीना' में अपने प्यार का परित्याग कर देती है। 'कालिख' के मामूली हेराफेरी कर रहे सरदार को पुलिस आतंकवादी बताकर उसकी मौत का सबब बनती है। 'आप, बी...! की बारहा बलात्कारों से शिकार लड़की इतनी डरी हुई है कि शरीफ़ बूढ़े डॉक्टर पर भी शक कर लेती है।

संग्रह की शीर्ष कहानी 'उठे हुए हाथ' पुस्तकों की महत्ता और उनके प्रति लगाव के लिए जुझ रहे व्यक्ति का मार्मिक चित्रण है। 'पुरुष' कहानी स्त्री पर पुरुष की मनमानी वर्चस्वता पर व्यंग्य है। युद्ध और प्रेम में सब कुछ जायज़ हैं, इसे रेखांकित करती है 'विभ्रम' कहानी। '...और चेन गिर गई' कहानी औरतों के परनिन्दा स्वभाव पर आक्षेप है। 'हम सही, दूसरे ग़लत' इस कहावत को चत्तिर्थ करती है कहानी 'रखैल' हकीम लुकमान की ख़ुदकुशी' में प्रयोग के तौर पर दो कथाएँ साथ ली गई हैं जिनमें भ्रमित व्यक्ति किस हद तक जा सकता है।



पुस्तक : उठे हुए हाथ
लेखक : अशोक गुजराती
प्रकाशक : नेशनल पेपरबैक्स, 4230/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
पृष्ठ : 117; **मूल्य :** 300 रुपये

यह दिखाया गया है। इसी तरह 'शुबहा', 'वरना', 'खुश क़दम' भ्रणित भी अत्यंत उद्देश्यपूर्ण कहानियाँ हैं।

जब पाठक को कोई कथा पढ़ते समय यह अनुभूति अनवरत होती रहती है कि यह मेरी अथवा मेरे किसी परिचित के साथ बीती घटना या घटनाओं पर आधारित है, तब वह उस रचना से पूरी तरह जुड़ जाता है। पढ़ना शुरू करता है तो अंत पर जाकर ही थमता है। यही ख़ासियत इस संग्रह की कहानियों की भी है।

एक लम्बा दौर है, जिसके तहत अशोक गुजराती की ये कहानियाँ विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में पाठकों द्वारा सराही गई हैं। जैसा कि कहानियों के कथ्य से और अंत में लिखे प्रकाशन स्थान एवं तिथि से स्पष्ट हो जाता है, इन कहानियों का सृजनकाल विस्तृत रहा है। बावजूद इसके शुरुआती कहानियाँ भी उनके साहित्यिक स्तर को प्रमाणित करती हैं तथा उत्तरोत्तर और अधिक समृद्ध होकर सामयिक मूल्यवत्ता के शिखर तक जा पहुँचती हैं।

बहुधा किसी-किसी को यह अहसास भी हो सकता है कि काश, यह कहानी यहाँ न ख़त्म होकर आगे और चलती रहती... ऐसे पाठक को वहाँ रुक कर यह सोचना चाहिए कि वहाँ 'पूर्ण विराम' नहीं है। इसके बाद पाठक का काम प्रारम्भ होता है। लेखक ने जो अनकहा छोड़ दिया है, उस पर विचार करने की आवश्यकता है। तब उसे मंज़िल दिखाई देगी। अशोक गुजराती की कहानियों की विशेषता यही है कि ये आपको सोचने के लिए मजबूर करती हैं।

अलावा इसके इन कहानियों की रवानी उन्हें रोचक बनाती है। भाषा सरल-सरस है, इसलिए आँखों से सीधे मस्तिष्क और दिल तक पहुँचती है। शिल्प में नवीनता है। शैली इतनी लुभावनी है कि पाठक को अपने साथ बहाती चलती है। पाठक इन कहानियों को पढ़ेंगे तो लेखक की अन्य कहानियों, लघुकथाओं और उपन्यासों को पढ़ने हेतु अवश्य लालायित हो उठेंगे। ❑

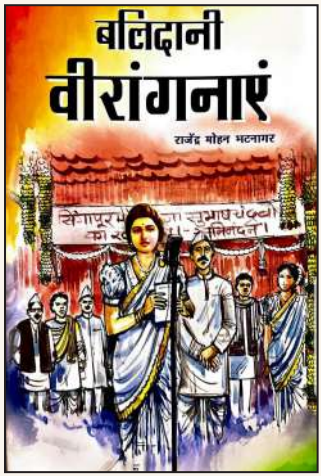
समीक्षक : प्रकाश पुरोहित

ई-मेल : prakashghisalalpurohit@gmail.com

प्रकाशन विभाग के विक्रय केन्द्र : नई दिल्ली : बुक गैलरी (पुस्तक दीर्घा), सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, दूरभाष : 011-24367260, **लखनऊ :** हॉल नं.1, दूसरी मन्जिल, केन्द्रीय भवन, अलीगंज, दूरभाष : 0522-2225455, **कोलकाता :** 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, दूरभाष : 33-22488030, **पटना :** बिहार : रा. सह. बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, दूरभाष : 0612-2683407, **मुम्बई :** 701 बी-विंग, सातवीं मन्जिल, केन्द्रीय सदन बेलापुर, नवीं मुम्बई, दूरभाष : 9522-27570686, **बंगलुरु :** एफ़ विंग, केन्द्रीय सदन, कोरामंगला दूरभाष : 080- 2 5 5 37244, **अहमदाबाद :** 4-सी, नेपच्यून टॉवर (एच.पी. पेट्रोल पम्प के निकट), नेहरू ब्रिज कॉर्नर, आश्रम रोड, दूरभाष : 079-26588669, **हैदराबाद :** कमरा नं. 204, द्वितीय तल, सी.जी.ओ. टॉवर्स, का वादिगुडा-500080, **चेन्नई :** राजाजी भवन, एनी बेसेन्ट नगर, दूरभाष : 044-24917673, **तिरुअनन्तपुरम :** गवर्मेंट प्रेस के निकट, दूरभाष : 041-2330650

प्रकाशन विभाग की पुस्तकें

बलिदानी वीरांगनाएँ



पुस्तक : बलिदानी वीरांगनाएँ
लेखक : राजेन्द्र मोहन भटनागर
पृष्ठ : 52
मूल्य : 100 रुपये

पुस्तकें ख़रीदने और सूची देखने के लिए प्रकाशन विभाग की वेबसाइट publicationsdivision.nic.in देखें। वेबसाइट पर जाने के लिए QR कोड स्कैन करें।

भारत के स्वाधीनता आंदोलन को गति, शक्ति और नेतृत्व देने में असंख्य लोगों का योगदान रहा है। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस इस आंदोलन का ऐसा ही एक नाम हैं, जिन्होंने अपनी वाकपटुता, राजनैतिक समझ और अद्भुत नेतृत्व कुशलता से हर उम्र के लोगों को आंदोलन से जुड़ने के लिए उद्वेलित किया। यह उनकी जनप्रियता का चमत्कार ही था कि उनके आह्वान पर आज़ाद हिन्द फ़ौज में भर्ती होने के लिए युवाओं में होड़ लग गईं। फ़ौज के लिए दान देने वालों की भीड़ उमड़ पड़ी। 'ख़ून दो, आज़ादी लो' के नारे पर मर-मिटने को तैयार रहने वालों की कोई कमी न रही। लोग धर्म, संस्कृति, जाति और भाषा के भेदों से परे जाकर, स्वतन्त्रता प्राप्ति के एक लक्ष्य को अपना ध्येय मानने लगे।

केन्द्रीय सूचना और प्रसारण मन्त्रालय के प्रकाशन विभाग से प्रकाशित पुस्तक 'बलिदानी वीरांगनाएं' आज़ाद हिन्द फ़ौज में 'रानी झाँसी रेजिमेंट' के गठन की पृष्ठभूमि पर आधारित है। वर्ष 1943 में युद्ध के अग्रिम मोर्चों के लिए किसी फ़ौज में महिला सैनिकों की भर्ती एक ऐतिहासिक घटना थी। नेताजी ने यह निर्णय लेकर नारी शक्ति के सामर्थ्य को सम्मान दिया था। उस समय तक महिला सैनिकों को सेना में नर्स जैसी भूमिका या अन्य कार्यालयी कार्यों के लिए तैनाती दी जाती थी। उन्हें युद्ध के अग्रिम मोर्चों पर हथियारबन्द पुरुष सैनिकों की तरह लड़ने के लिए नहीं भेजा जाता था।

लेखक राजेन्द्र मोहन भटनागर ने वर्ष 1943 में सिंगापुर के कैथे सिनेमा हॉल में हुए नेताजी के स्वागत समारोह की पृष्ठभूमि में रहीं कुछ छात्राओं की कथा को पुस्तक का स्वरूप दिया है। उस समारोह में छात्राओं ने नेताजी के समक्ष ऐसा क्या कहा, जो उन्हें मंच पर ही 'रानी झाँसी रेजिमेंट' के गठन का निर्णय लेना पड़ा? अलग-अलग सामाजिक पृष्ठभूमियों से आईं उन छात्राओं को फौज में शामिल होने के लिए किन अंतर्द्वन्द्वों और चुनौतियों से गुज़रना पड़ा? युद्ध मैदान में उतरने के बाद वह फ़ौज में अपनी भूमिका के साथ कितना न्याय कर पाईं? इन तमाम प्रश्नों को यह पुस्तक कथा शैली में भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करती है।

कथा के पात्रों का वर्णन और उनके संवादों की प्रवाहमयी भाषा, पात्रों को जीवंतता प्रदान करती प्रतीत होती है। यह पुस्तक 52 पृष्ठों की है, मगर इसे पढ़ते हुए लगातार यह अहसास बना रहता है कि कोई ऐतिहासिक उपन्यास पढ़ा जा रहा है। एक पृष्ठ से दूसरे पृष्ठ पर जाते हुए जिज्ञासा का लगातार बढ़ता स्तर, पुस्तक को एक ही बार में पढ़ जाने को बाध्य करता है। ❑

प्रस्तुति : अभिषेक चतुर्वेदी

फ़ॉर्म-IV
(नियम 8 के अंतर्गत)

आजकल के स्वामित्व का विवरण

(1) प्रकाशन	नई दिल्ली
(2) प्रकाशन की अवधि	मासिक
(3) मुद्रक का नाम	अनुपमा भटनागर
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003
(4) प्रकाशक का नाम	अनुपमा भटनागर
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003
(5) सम्पादक का नाम	फरहत परवीन
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	प्रकाशन विभाग, कमरा नं, 601-डी, सूचना भवन सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003
(6) उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	सूचना और प्रसारण मन्त्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली-110001 पूर्ण साझीदार है।

मैं अनुपमा भटनागर एतद् द्वारा घोषणा करती हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

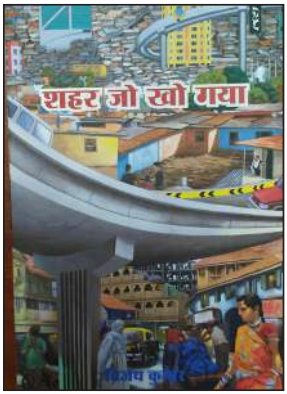
दिनांक : 5-1-2024

अनुपमा

अनुपमा भटनागर
(प्रकाशक)

पुस्तक आजकल

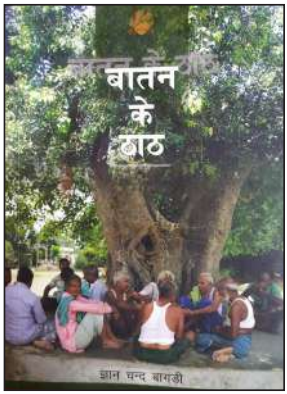
पुस्तकें मिलीं



पुस्तक : शहर जो खो गया : बदलता शहर और एक शहरनामा
लेखक : विजय कुमार
प्रकाशक : सेतु प्रकाशन प्रा. लि., सी-21 सेक्टर-65, नोएडा-201301 (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 470; **मूल्य :** 550 रुपये



पुस्तक : लाशों के शहर में (कविता-संग्रह)
लेखक : जयप्रकाश कर्दम
प्रकाशक : कलमकार पब्लिशर्स प्रा. लि., 217 भारत अपार्टमेंट, सेक्टर-16-बी, द्वारका, नई दिल्ली-110078
पृष्ठ : 128; **मूल्य :** 175 रुपये



पुस्तक : बातन के ठाठ (कहानियाँ)
सम्पादक : ज्ञान चन्द बागड़ी
प्रकाशक : रेमाधव आर्ट, के. 103, राकेश मार्ग, नेहरू नगर, ग़ाज़ियाबाद-201010 (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 158; **मूल्य :** 360 रुपये

पुस्तक : पहरुआ जन
लेखक : मिथिलेश्वर
प्रकाशक : सत्यसाहित्य प्रकाशन, 694, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-110006
पृष्ठ : 200; **मूल्य :** 500 रुपये (हार्ड बाउंड)

पुस्तक : कोणार्क : एक प्रेम मंदिर
लेखक : संजीव कुमार
प्रकाशक : इण्डिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड, सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 108; **मूल्य :** 175 रुपये (पेपर बैक) 225 (हार्ड बाउंड)

पुस्तक : कैनवास पर बिखरे मोती (रेखाचित्र एवं लघु कविताएँ)
कवि एवं चित्रकार : सिद्धेश्वर
प्रकाशक : इंडिया नैटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड, सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 162; **मूल्य :** 300 रुपये

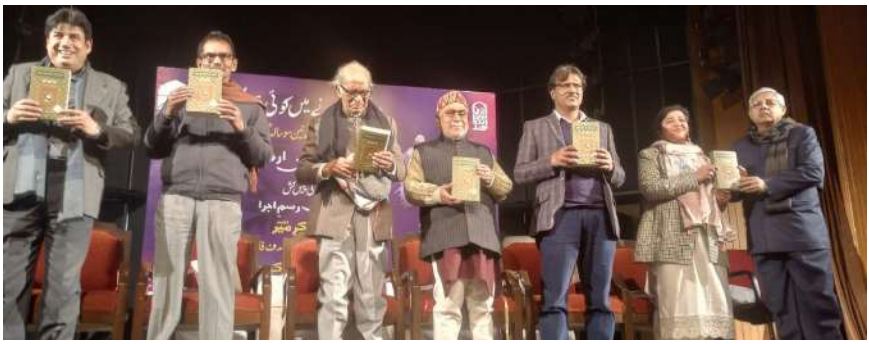
पुस्तक : यादों का गुलदस्ता
लेखक : इम्तियाज़ अहमद ग़ाज़ी
प्रकाशक : गुफ़्तगू पब्लिकेशन, 123ए/1, हरवारा, धूमनगंज, प्रयागराज-211015 (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 160; **मूल्य :** 300 रुपये (हार्ड बाउंड)

पुस्तक : उगें हरे संवाद (दोहा-संग्रह)
लेखक : योगेन्द्र वर्मा 'व्योम'
प्रकाशक : गुंजन प्रकाशन, सी-130, हिमगिरी कॉलोनी, काँठ रोड, मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 104; **मूल्य :** 200 रुपये

पुस्तक : हेति-सुकन्या अकथ कथा (उपन्यास)
लेखिका : सिनीवाली
प्रकाशक : रुद्रादित्य प्रकाशन, 109, एच/आर/3-एन, ओ.पी. एस. नगर, कालिन्दीपुरम, प्रयागराज-211011 (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 192; **मूल्य :** 300 रुपये

साहित्यिक गतिविधियाँ

• मीर तक़ी मीर की 300वीं वर्षगाँठ



रेख़्ता के मशहूर शायर मीर तक़ी मीर की 300वीं वर्षगाँठ पर अंजुमन तरक्क़ी उर्दू (हिन्द) द्वारा इंडिया हैबिटैट सेंटर में 22 जनवरी, 2024 को 'अगले ज़माने में कोई मीर भी था' कार्यक्रम आयोजित किया गया। इस मौक़े पर मीर तक़ी मीर की 1500 से अधिक ग़ज़लों और चुनिन्दा रुबाइयों के संग्रह 'चलो टुक मीर को सुनने' पुस्तक का लोकार्पण हुआ। राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित इस पुस्तक का सम्पादन विपिन गर्ग ने किया है।

लोकार्पण के दौरान मंच पर अंजुमन तरक्क़ी उर्दू (हिन्द) के जनरल सेक्रेटरी अतहर फ़ारूक़ी, दास्तानगो महमूद फ़ारूक़ी, सदफ़ फ़ातिमा, जामिया मिल्लिया इस्लामिया के अहमद महफ़ूज़, पुस्तक के सम्पादक विपिन गर्ग, राजकमल प्रकाशन समूह के अध्यक्ष अशोक माहेश्वरी समेत अन्य गणमान्य मौजूद रहे। लोकार्पण के बाद दास्तानगो महमूद फ़ारूक़ी और दारेन शहीदी ने मीर की ज़िन्दगी पर आधारित दिलचस्प दास्तान 'दास्तान-ए-मीर' सुनाई।

'चलो टुक मीर को सुनने' संग्रह के सम्पादक ने कहा कि मीर ने शायरी की सभी विधाओं को आज़माया लेकिन उनका पसन्दीदा शग़ल ग़ज़लगोई है। मीर ने ग़ज़लों में तक़रीबन 14-15 हज़ार शेर कहे हैं। इसी कारण मीर को 'ख़ुदा-ए-सुख़न' कहा जाता है। संग्रह में मीर की ग़ज़लों के लगभग 8000 शेरों के अलावा परिशिष्ट के रूप में 15-20 ग़ज़लें हैं जो कि उनकी मस्नवियों, शिकारनामों आदि से ली गई हैं तथा कुछ रुबाइयाँ भी इसमें दी गई हैं।

प्रस्तुति : संतोष कुमार *ई-मेल : santosh@zimisha.com*

• व्यंग्य शैली में लघुकथा

"व्यंग्य शैली में लिखी गई एक लघुकथा है 'समाज सेवा'। लघुकथा में व्यंग्य मिश्रित करने के क्रम में जसवीर चावला एक प्रयोगधर्मी लघुकथाकार के रूप में दिख पड़ते हैं।"

भारतीय युवा साहित्यकार परिषद के तत्त्वावधान में गूगल मीट के माध्यम से फ़ेसबुक के

'अवसर साहित्यधर्मी पत्रिका के पेज पर' के कार्यक्रम का संचालन करते हुए संयोजक सिद्धेश्वर ने उपरोक्त उद्‌गार व्यक्त किए। मुख्य अतिथि जसबीर चावला ने अपनी एक दर्जन लघुकथाओं का पाठ कर प्रबुद्ध श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर दिया। अध्यक्षीय टिप्पणी में अनीता मिश्रा सिद्धि ने कहा कि "आज हेलो फ़ेसबुक लघुकथा सम्मेलन कार्यक्रम बहुत ही सार्थक रहा।"



इस संगोष्ठी के दूसरे सत्र में एक दर्जन लघुकथाकार भी अपनी लघुकथाओं के साथ उपस्थित थे। सपना चन्द्रा की सेवा सम्मान आज के साहित्य के बाज़ारीकरण पर करारा प्रहार किया है। वहीं पूनम कतरियार तथा राज प्रिया रानी की 'और रावण मर गया' लघुकथा हृदय को छू गई। नरेन्द्र कौर छाबेड़ा अनुज प्रभात, गार्गी रॉय, रजनी श्रीवास्तव अनंता, पूनम श्रेयसी, निर्मला, मनोरमा पन्त, सुनीता मिश्र, नोरिन शर्मा की उपस्थिति भी महत्वपूर्ण रही। सिद्धेश्वर की लघुकथा 'उपहार' भी प्रभाव छोड़ने में कामयाब रही।

इस ऑनलाइन सम्मेलन में कल्पना भट्ट, सुनीता मिश्रा, पुष्प रंजन, नन्द कुमार मिश्र, सुनील कुमार उपाध्याय, संतोष मालवीय, वर्षा अग्रवाल, विनोद नायक आदि की उपस्थिति भी महत्वपूर्ण रही। अंत में, संस्था की सचिव ऋचा वर्मा ने धन्यवाद ज्ञापन दिया।

• वैश्विक संगोष्ठी

भारत नाम और भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में वैश्विक संगोष्ठी का आयोजन हुआ। 'वैश्विक हिन्दी सम्मेलन' के निदेशक मोतीलाल गुप्ता 'आदित्य' ने वरिष्ठ पत्रकार वेदप्रताप वैदिक के योगदान का स्मरण करते हुए उन्हें नमन किया। उन्होंने न्याय, शिक्षा, रोज़गार तथा व्यापार-व्यवसाय में जनभाषा को बढ़ावा देने के लिए आवाज़ उठाने के लिए जनता का आह्वान किया।

सरोज कुमार ने हिन्दी भाषा साहित्य के महत्व पर अपनी बात रखी। संगोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए, केरल से पधारे 'शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास' के राष्ट्रीय सहसंयोजक ए. विनोद ने कहा कि अंग्रेज़ों और विदेशी आक्रमणकारियों ने हमारी भाषा-संस्कृति को नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, जबकि देवी अहिल्याबाई और महाराणा प्रताप जैसे देशप्रेमियों ने भारतीय भाषा-संस्कृति की रक्षा की।

कार्यक्रम में वैश्विक हिन्दी सम्मेलन द्वारा सुप्रसिद्ध चिकित्सक मनोहर भंडारी, अधिवक्ता अनिल त्रिवेदी, भारतीय भाषा सेवी निर्मल कुमार पाटोदी, साहित्यकार सरोज कुमार और पत्रकार तथा हिन्दी भाषा डॉट कॉम के संस्थापक-सम्पादक अजय जैन 'विकल्प' को 'वैश्विक हिन्दी सेवा सम्मान' से विभूषित किया गया। संगोष्ठी के प्रारम्भ में इंदौर प्रेस क्लब के अध्यक्ष प्रदीप कुमार ने अतिथियों का स्वागत किया। कार्यक्रम में केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मंडल के पूर्व उपाध्यक्ष व साहित्यकार अनिल जोशी, सोनाली नरगुंदे, 'शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास' के स्थानीय पदाधिकारी दिनेश दवे, प्रियदर्शनी अग्निहोत्री, शोभा ताई तथा पत्रकार संजय यादव सहित अनेक पत्रकार,



लेखक, अधिवक्ता, चिकित्सक व नगर के गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। भारतीय भाषा मंच की पदाधिकारी प्रेमलता चुटैल ने धन्यवाद ज्ञापित किया। कार्यक्रम का संचालन अनुभूति त्रिपाठी द्वारा किया गया।

प्रस्तुति : वैश्विक हिन्दी सम्मेलन *ई-मेल : vaishwikhindisammelan@gmail.com*

• नए कथाकारों को मिला 'कथालोक' का फलक



भारतीय कथाओं के दो-दिवसीय अद्‌भुत उत्सव 'कथालोक' का दिल्ली में 10 और 11 फरवरी को आयोजन हुआ। कनॉट प्लेस के पालिका पार्क में चला यह उत्सव नामचीन कथाकारों, साहित्य प्रेमियों और दास्तानगोई (कहानी सुनाने की विधा) की नई प्रतिभाओं के संगम का मंच बना। इस उत्सव का आयोजन आज़ादी का अमृत महोत्सव, केन्द्रीय संस्कृति मन्त्रालय के सहयोग व समन्वय से 'समय यान' द्वारा किया गया। कार्यक्रम की मुख्य अतिथि केन्द्रीय संस्कृति मन्त्री मीनाक्षी लेखी थीं।

'कथालोक' में पधारे दर्शकों को जहाँ एक ओर उभरते कथाकारों की कहानियों को सराहने का मौक़ा मिला, वहीं दूसरी ओर नामी भारतीय लेखकों की कहानियों को अलग-अलग शैलियों में सुनने का भी मौक़ा मिला। इस अवसर पर अभिनेता व कलाकार आदित्य ओम ने 'कथालोक' के प्रभाव पर बात करते हुए कहानियों की परिवर्तनकारी भूमिका पर व्यक्तिगत अनुभव साझा किए।

'कथालोक' ने अलग-अलग आयु वर्ग के सैकड़ों दर्शकों को आकर्षित किया। इसके अंतर्गत प्रतियोगिताओं की विभिन्न श्रेणियों में कुल 95 प्रतिस्पर्धियों ने भाग लिया, जिनमें 75 प्रतिस्पर्धी विभिन्न कॉलेजों के छात्र थे। इस प्रतियोगिता के प्रथम विजेता रहे अभिनव कुमार झा, द्वितीय पुलकित गर्ग, तृतीय स्थान प्राप्त किया शीतल ने। आयोजन के दौरान एक ओपन माइक सत्र का भी आयोजन किया गया, जिसमें दर्शकों को अपनी कहानियाँ सुनाने का मौक़ा दिया गया।

प्रस्तुति : सुमनेश कुमार चतुर्वेदी *ई-मेल : samayyaaanlive@gmail.com*

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2024



सूचना एवं प्रसारण सचिव श्री संजय जाजू नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2024 में प्रकाशन विभाग के स्टॉल का उद्घाटन करते हुए, साथ में हैं महानिदेशक डॉ. अनुपमा भटनागर (दाएँ) और अपर महानिदेशक श्रीमती शुभा गुप्ता (बाएँ)



श्री संजय जाजू ने प्रकाशन विभाग के स्टॉल पर 'इंडिया 2024' और 'करियर कॉलिंग' का विमोचन किया, साथ में महानिदेशक डॉ. अनुपमा भटनागर, और दोनों अपर महानिदेशक सुश्री शुभा गुप्ता व श्री एल मधु नाग भी हैं।



सूचना एवं प्रसारण सचिव प्रकाशन विभाग की पत्रिकाएँ 'आजकल', 'योजना' एवं अन्य पुस्तकों का अवलोकन करते हुए



नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2024 में प्रकाशन विभाग के स्टॉल के सामने महानिदेशक डॉ. अनुपमा भटनागर के साथ अधिकारीगण





नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2024 में प्रकाशन विभाग के स्टॉल पर किताबें देखते हुए पाठक और दाईं ओर बच्चों का सेल्फ़ी पॉइन्ट

जयपुर लिटरेचर फ़ेस्टिवल





जयपुर लिटरेचर फ़ेस्टिवल की साज-सज्जा







जयपुर लिटरेचर फ़ेस्टिवल की साज-सज्जा



जयपुर लिटरेचर फ़ेस्टिवल में जानी-मानी लेखिका सुधा मूर्ति को स्मारक मग भेंट करते हुए प्रकाशन विभाग के प्रतिनिधि श्री रजत





नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में ऑथर्स कॉर्नर कार्यक्रम में सम्बोधित करते हुए महानिदेशक डॉ. अनुपमा भटनागर और 'करियर कॉलिंग' पुस्तक में योगदानकर्ता तथा लेखिका सुश्री निधि प्रसाद



इंटरनेशनल पब्लिशर्स एसोसिएशन की अध्यक्ष, सुश्री कैरिन पंसा, फ़ेडरेशन ऑफ़ इंडियन पब्लिशर्स के अध्यक्ष श्री रमेश के. मित्तल और मानद महासचिव, श्री प्रणव गुप्ता के साथ प्रकाशन विभाग की अपर महानिदेशक श्रीमती शुभा गुप्ता और सम्पादकीय अधिकारीगण



तिरुनेलवेल्ली पुस्तक मेले में बंदीग्रह विभाग को पुस्तक भेंट करते हुए उप निदेशक श्री पी.एस. मदन



काच्चिपुरम पुस्तक मेले का दृश्य

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

ई-रिसोर्स एग्रीगेटर (ईआरए)

के एम्पैनलमेंट के लिए आवेदन आमंत्रित

सरकार के प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थान से जुड़ने और उसके ई-प्रकाशनों के विक्रय का सुनहरा अवसर



प्रमुख लाभ :-

- प्रकाशन विभाग की लोकप्रिय ई-पुस्तकें और ई-पत्रिकाएं उपलब्ध कराने का अवसर।
- प्राप्त राजस्व में 30% की निश्चित हिस्सेदारी।
- किसी निवेश की आवश्यकता नहीं।
- मात्र 2000 रुपये का पंजीकरण शुल्क।

अधिक जानकारी के लिए देखें –
www.publicationsdivision.nic.in

संपर्क करें
फोन : 011 24365609
ईमेल : businesswng@gmail.com
पता : व्यापार स्कंध, कमरा संख्या–758, सूचना भवन, लोधी रोड, नई दिल्ली–110003

डाक तार पंजीयन सं. डीएल(एस)-05/3222/2024-26
Magazine Post No. DL(DS)-42/MP/2022-23-24
U(DN)-49/2021-23 Licenced to post without pre-payment at RMS Delhi
● 10 फरवरी 2024 को प्रकाशित ● 21-22 फरवरी 2024 को डाक द्वारा जारी

ISSN: 0971-8478
आरएनआई : 701/57



किराना घराने की
सुप्रसिद्ध शास्त्रीय गायिका प्रभा अत्रे
13 सितम्बर, 1932 – 13 जनवरी, 2024
(भीतर के पृष्ठों में श्रद्धांजलि)

प्रकाशक व मुद्रक अनुपमा भटनागर, महानिदेशक, प्रकाशन विभाग द्वारा संदीप प्रेस, सी-105/2, इंडस्ट्रियल एरिया, फ़ेस-1, नारायणा, नई दिल्ली-110028 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से प्रकाशित। सम्पादक : फरहत परवीन